* श्री *

आदर्श-बन्धु

—: या :—

पाप-परिणाम

लेखक :—

जमुनादास मेहरा ।

प्रकाशक :—

रिखबदास बाहिती,

प्रोप्राईटर:—"दुर्गा प्रेस" और

आर० डी० बाहिती एण्ड को०,

नं० ४, चोरबगान, कलकत्ता ।

तृतीय बार } सन् १९२४ { मूल्य १) रेशमी १॥)

प्रकाशक :—
रिखबदास बाहिती,
आर० डी० बाहिती एण्ड का०,
नं० ४, चोरबगान, कलकत्ता ।
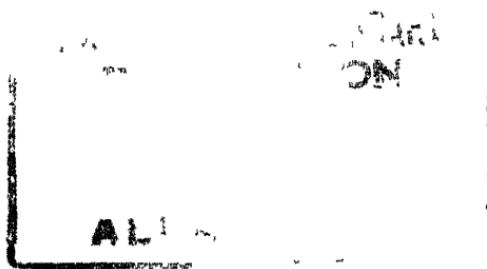
मुद्रक—
रिखबदास बाहिती,
"दुर्गा प्रेस"
नं० ४, चोरबगान,
कलकत्ता

वक्तव्य।

(प्रथम संस्करण)

हमें कदापि यह आशा न थी, कि कभी ऐसा भी सुअवसर उपस्थित होगा, कि कोई भेंट लेकर हम हिन्दी संसारमें उपस्थित होनेका साहस कर सकेंगे; परन्तु जगन्माता जगदम्बाकी असीम दयासे आज हमें वह सुअवसर प्राप्त हुआ है, कि हम अपने बहुत दिनोंके विचारको कार्यरूपमें परिणतकर हिन्दी पाठकोंको भेंट स्वरूप यह पुस्तक अर्पण करते हुए, हिन्दी-जगतमें प्रवेश करनेकी ढिठाई करते हैं। आशा है, कि सहृदय पाठक तथा उदारहृदय समालोचकगण हमारी यह ढिठाई क्षमाकर हमें वाधित करेंगे।

हिन्दी भाषामें यद्यपि आजकल नित्य प्रति नवीन नवीन ग्रंथ बन रहे हैं और अनेकानेक विषयोंको लेकर सुलेखकगण हिन्दी साहित्यका भण्डार भरनेकी चेष्टा कर रहे हैं तथा यद्यपि प्रति मास अनेक ग्रन्थ छपते हैं और नाटकोंकी ओर भी कितने ही सुशिल्पी लेखकोंकी सुदृष्टि फिरी है तथापि अभी मौलिक सामाजिक नाटकोंका हिन्दीमें एक प्रकारसे अभाव ही है और इस अभावकी पूर्त्ति होना भी परम आवश्यक है। वर्त्तमान समयमें नाटकोंकी ओर दृष्टि डालनेसे ही सबसे प्रथम पार्सी कम्पनियों-की ओर दृष्टि जाती है, जो अधिकतासे नाटक खेलकर हिन्दी-समाजका मनोरञ्जन करती हैं; परन्तु दुःखसे कहना पड़ता है, कि जिस उद्देश्यसे महानुभावोंने नाटकोंकी सृष्टि की है, वह उद्देश्य इनसे सिद्ध नहीं होता और न सर्व-साधारणको वह उपदेश ही

प्राप्त होता है, जो नाटकों द्वारा मिलना चाहिये और वास्तवमें जिनके लिये नाटकोंकी सृष्टि हुई है। इन नाटकोंमें रङ्गमञ्चपर जिस समय पात्र-पात्रीगण अपना नाट्य-कौशल दिखाते हैं, जिस समय अपने हाव-भाव द्वारा दर्शकोंके चित्तपर कर्म्मफलका प्रभाव डालते हैं और जिस समय अपने कार्य-कौशलसे दर्शकों-को मुग्ध करते हैं ; उस समय भी, पार्सी कम्पनीमें खेले जाने-वाले नाटकोंकी रचना उपदेशप्रद दृष्टिसे न होनेके कारण; उनका प्रभाव वैसा नहीं पहुंचता जैसा कि पहुंचना चाहिये। इसका भी एक कारण है। इन कम्पनियोंका उद्देश्य धन उपार्ज्जन करना है। इसी उद्देश्यपर उनका प्रधान लक्ष्य है, न कि परिणामपर। इसी कारणसे इनका वैसा प्रभाव भी नहीं पहुंचता और न जन-समाजको उस ढङ्गसे उपदेश ही प्राप्त होता है। हाँ, मनोरञ्जन अवश्य, और गहरा होता है। इस सम्बन्धमें बंगला थियेटरोंने बड़ी उन्नति की है और उन्होंने नाटकोंका यही उद्देश्य लक्ष्यमें रखकर कार्य किया है और अपने समाजपर उत्तम प्रभाव भी डाला है।

कुछ भी हो, हमारे कथनका यह तात्पर्य कदापि नहीं है, कि पार्सी कम्पनियों द्वारा कुछ काम नहीं होता। "नहीं मामासे काना मामा अच्छा ही है।" तथापि इनमें बहुतसे सुधारोंकी अभी आवश्यकता है।

प्रस्तुत पुस्तकमें हमने उद्योग किया है कि दोनों ही कार्य रहें। अर्थात् विषय सामाजिक, वर्त्तमान समयके उपयुक्त और उपदेप्रद, तथा चित्ताकर्षक हो और जो सदासे पार्सी कम्पनियोंके भक्त रहते आये हैं, वे भी यदि इसे देखें, तो उनका भी

मनोरञ्जन हो। इसलिये इसमें स्थान स्थानपर पार्सी कम्पनीके ढङ्गकी शायरी तथा हास्य-कौतुक आदि भी दे दिया है। विषय पाठकोंका अपरिचित नहीं है। समयके परिवर्त्तनके साथ वेश्याओंकी अधिकता, कितने ही मनुष्योंका अपव्ययी और कुकर्म्मी बन जाना तथा वर्त्तमान समयके कपटी मित्र तथा सच्चे स्वामिभक्त और दुर्जन सेवक प्रभृति कतिपय सामाजिक विषयों-को लेकर ही इस पुस्तककी रचना की गयी है। यह सब कुछ तो ठीक है; परन्तु यह कह देना भी हम परम आवश्यक समझते हैं, कि आजतक हमने कोई पुस्तक नहीं लिखी है और न कविता ही करना जानते हैं और न शायर ही हैं। इसीसे आप लोग समझ सकते हैं, कि हमारी यह पुस्तक कैसी हुई होगी; तथापि दृढ़ आशा है; कि आपलोग हमारे इस अनुचित साहसके लिये हमें क्षमा प्रदान करेंगे।

एक बात कह देना और भी आवश्यक है। इस पुस्तकका मुद्रण आरम्भ होनेके बाद ही इसकी हस्तलिखित पुस्तक कहीं खो गयी और बड़ी जल्दीमें दूसरी लिखकर छपवानी पड़ी। सम्भव है, कि इसी कारणसे इसमें अनेकानेक भूलें रह गयी हों। आशा है; पाठकगण भूलोंके लिये क्षमा करनेके साथ ही साथ यदि हमें सूचित करनेकी कृपा करेंगे तो हम बड़े ही उपकृत होंगे।

भवदीय—

जमुनादास मेहरा।

द्वितीय संस्करण।

यह जगदाधारकी अनोखी लीला, हिन्दी पाठकोंकी अपूर्व कृपा और उदारहृदय समालोचकोंकी असीम उदारताका ही उत्कृष्ट फल है, कि इस नाटकका द्वितीय संस्करण इतना शीघ्र हम पाठकोंकी सेवामें अर्पणकर प्रसन्नतासे फूले नहीं समाते हैं। इस नाटकके प्रकाशित होते ही हिन्दी संसारने जिस तरह इसे अपनाकर हमारा उत्साह बढ़ाया, कलकत्तेकी हिन्दी नाट्य-समितिने अल्फ्रेडके रंगमंचपर इसका अभिनयकर सर्वसाधारणसे जो प्रशंसा प्राप्त की और कलकत्तेके प्रसिद्ध विद्वान तथा नाट्य-प्रेमियोंने इसपर जो शाबाशी दी उसीसे यह प्रमाणित होता है, कि यह नाटक रुचिकर, सामयिक तथा मनोरंजक ही नहीं हुआ, बल्कि अत्यन्त उपदेशप्रद भी हुआ। और इसी उत्साह-प्रदानका यह परिणाम है, कि हम इन्हीं लेखकके लिखे, सती-चिन्ता, कृष्णसुदामा, विश्वामित्र, मोरध्वज, देवयानी प्रभृति नाटक लेकर नाटक प्रेमियोंके सम्मुख रखनेमें समर्थ हुए हैं। आशा है, इन नाटकोंको भी पाठक उसी तरह अपनायेंगे और उन्होंने अपनाया है, इसका प्रमाण भी हमें प्राप्त है।

कागजकी मँहगी तो अवश्य है, परन्तु ऐसी सर्वप्रिय पुस्तकका दाम बढ़ाना हम उचित नहीं समझते। इसीलिये इस बार अच्छी तरह संशोधन करा, पहलेसे भी बढ़िया कागजपर छापकर प्रिय पाठकोंके सम्मुख रखते हैं। आशा है, कि पाठक इसपर अपनी पूर्व कृपा दिखाकर बाधित करेंगे।

कलकत्ता। भवदीय—

ता० २६-११-२२ रिखबदास बाहिती।

तृतीय संस्करण

हमें यह देखकर हर्ष होता है कि हिन्दी संसारमें अल्प समयके भीतर ही इस पुस्तकका इतना आदर हुआ है कि हम इसका तृतीय संस्करण लेकर पाठकोंके सामने उपस्थित हो रहे हैं। पहलेके संस्करणोंमें जो कुछ त्रुटियाँ रह गयी थीं, इस बारके संस्करणमें उनका संशोधन कर दिया गया है। आशा है, उदार पाठकगण पहलेहीके समान इसको अपनायेंगे।

वैशाखी पूर्णिमा भवदीय—

१९८१ रिखबदास बाहिती।

आदर्श बन्धु

या

नाटक

दृश्य पहिला ।

(फर्शपर गालीचा बिछा है । तकियायें लगी हैं । रज़िया, मनोरञ्जन. कालीदास साथ साथ बैठे हैं । अगल बग़ल सफ़दे और एक ओर कुछ हटकर एक नौकर बैठा है, बीचोबीच पानदान, इत्रदान, शराबकी बोतल गिलास बगैरह रखे हैं ।)

कालीदास—(रज़ियासे) आपने क्या आज गाने बजानेकी कसम खाई है ? या मेरे पहले पहल आनेके कारण यह उदासी छाई है ?

रज़िया—(नखरेसे) उदासी और आपकी वजह से ! नहीं

नहीं; ऐसा न फ़रमाइये। क्या मैं किसी बातसे इन्कार कर सकती हूं ?

> "क्या भला हासिल मुझे, होगा कभी इनकारमें।
> आप चाहें बेच लें, मुझको सरे बाज़ारमें॥"

मनोरञ्जन—वाहवाह! वाहवाह!! क्या फबती कही है! (इशारेसे रजियाको उसकाता है।)

काली०—(हँसकर)

> "इस तरह है जब कि मुझपर, मेहरबानी आपकी।
> क्यों न दिल यह याद रक्खेगा, कहानी आपकी॥"

सरंगिया—लो, रज़िया बीवी! अब तो तुम्हारा सितारा जगमगाया। तभी तो हमारे नये हजूरके दिलमें ऐसा ख़याल आया!

मनो०—तो क्या आज सचमुच ही गाने बजानेका मुहूर्त नहीं है ? अच्छा तो मैं इसकी दवा करता हूं। (शराबका गिलास भरकर रज़ियाको देता हुआ) लो, ज़रा दिलपर सान चढ़ाकर बस एक उम्दा सी गज़ल गाओ और मेरे नये मित्रको अपना कौतुक दिखाओ। (कालीदासको पिलानेका इशारा करता है)

रज़िया—(शराबका गिलास कालीदासके आगे बढ़ाती हुई) लें, जरा आप भी इस सञ्जीवनी बूटीके अर्कका मज़ा उठायें—जिससे दोनों दिलोंके फाटक खुल जायें।

काली०—(हँसकर) और सदाके लिये इसके अधीन हो जायें। नहीं नहीं, मैं इस बुरी बलाको नहीं पी सकता, क्योंकि, इसका पीनेवाला फिर इसके बिना जी नहीं सकता। मैं इसके अवगुण भली भाँति जानता हूँ :—

"इस हिन्दका सब धर्म डुबाया शराबने।
होना जो न था कर्म्म कराया शराबने॥
इसके नशेके जोशमें अच्छे न ख्याल हों।
बल्कि कुकर्म्म ही है कराया शराबने॥
देखा था जिन्हें महलोंमें, आरामसे सोते।
मिट्टीमें उन्हें अन्त, मिलाया शराबने॥
धनका शुमार जिनके न था, उनको भी देखा।
दर दरका टुकड़ाख़ोर, बनाया शराबने॥
कहते न ख़त्म होगी, बुराई शराबकी।
कुत्तोंसे पड़े मुँहको, चटाया शराबने॥"

सरङ्गिया—(रजियाको, धीरेसे)

"बनता है भला देखो तो, कैसा यह सिमाना।
छूटे न कहीं देखना, उल्लू यह फसाना॥"

(रजियाका रोने लग जाना)

मनो०—हैं हैं! रज़िया! यह क्या करने लगी? तू भी बिना समझे ही दिल दे बैठी।

काली०—(स्वतः) हैं, यह क्या! रोने लग गयी!! (प्रकट) प्यारी! ऐसी क्या बात मैंने कही जिससे तू रोने लग गई?

रज़िया—(मुँह फेरकर रुखाईसे) बस मुझे न सताओ :—

"मैं तो मरती हूँ मगर, तुमको कदर कुछ भी नहीं।
मैंने समझा कि मुहब्बतमें असर कुछ भी नहीं॥"

मनो०—मित्र कालीदास! तुमको ज़रा भी किसीको तर्स नहीं आती :—

"मित्रता क्या सहज है, जब मनमें ऐसा खयाल है।
बिछते ही शतरञ्जके, पहली जो ऐसी चाल है॥"

काली०—(स्वतः) तो क्या यह सचमुच ही मुझपर मरती है? तो कुछ डर नहीं, इस असार संसारका यह भी एक निराला ही फूल है। मनुष्यको हरएक चीज़का थोड़ा थोड़ा आनंद ले लेना ही उचित है। (प्रकट) अच्छा प्यारी! यद्यपि मैं इस चीजको भली भाँति जानता हूं, तथापि मैं तुम्हारा प्रेम देखकर इस बुरी सलाहको भी मानता हूं। (हाथ बढ़ाकर) ला, पिला। जो काम आजतक मेरे पुरखोंने नहीं किया, वह आज तेरे प्रेममें पड़कर मैं करता हूं—

"आपके हाथोंसे मद क्या ज़हर भी पीना पड़े।
है नहीं इन्कार अब, मरना चाहे जीना पड़े॥"

रजिया०—(खुश होकर कालीदासको शराबकी गिलास देती हुई) आखिर मेरे सच्चे प्यारने असर डाल ही दिया।

"हो चुकी बस आजसे लौंड़ी तुम्हारी बातपर।
मैं अगर फिर जाऊँ तो लानत है मेरी जातपर॥"

काली०—(शराब पीकर हँसते हुए)

"मैंने समझा था, कि मुझसे हो गया परहेज है।
पर नहीं मालूम था, मेरा सितारा तेज है॥"

मनो०—भाई! यह तो अच्छी रही :—

आपकी बातोंमें मैं, योंही भटकता रह गया।
आप दोनों मिल गये, पर मैं लटकता रह गया॥

(सबका हँस पड़ना—रजियाका मनोञ्जनको शराबका गिलास देना)

रजिया०—(हँसती हुई) लीजिये, लीजिये जनाब! आपके मुँहसे क्यों पानी टपकने लगा? (गिलासमें शराब भरकर देना)

मनो०—इस वास्ते, कि प्रेमकी बरसातमें मैं क्यों सूखा रहूं!

(सबका हंस पड़ना)

काली०—प्यारी!

रजिया०—मैं वारी।

काली०—तो अब गानेकी आये बारी।

मनो०—(सफरदाओंसे) हाँ हाँ, उस्तादजी! होने दो, कुछ होने दो।

रजिया०—सुनिये, सुनिये, एक क्या पचास सुनिये...

(गायन)

"किया है तूने क्या जुल्म जालिम, अदाएँ बाँकी दिखा दिखाकर।
लिया है दिल तो सम्हाल रखना, न फेर देना हवस मिटाकर॥
अगर्चे दुशमन भी हो जमाना, न ख्याल दिलपे जरा भी लाना।
हो न ऐसा बदल दे कोई, ये दिल तुम्हारा सिखा सिखाकर॥
मिलेंगी सूरत हजारों आली, मगर वे होगी बफ़ासे खाली।
समा न लेना नजरमें अपने, किसीको मुझसे छिपा छिपाकर॥"

काली०—वाहवाह! वाहवाह! क्या गाया है, मानों मुझपर तानोंका तीर चलाया है।

मनो०—वाहवाह! वाहवाह! कमाल कर दिखा[illegible] है, पर भाई, अब यदि तुमने भी इसका उत्तर न सुनाया तो क्या आनंद आया!

रजिया०—(कालीदासको ओर संकेतकर) तो क्या आपको

भी कुछ गानेका शौक है ?

कालीo—नहीं नहीं; मैं तो कुछ जानता ही नहीं।

मनो०—रजिया ! तुम इनकी बातोंमें न आओ, ये भी एक अच्छे गानेवाले है। इनके ढंग तुमसे भी निराले हैं।

रजिया—हाँ ! (कालीदाससे) तब तो आप भी एक चीज गाइये। मुझसे न छिपाइये।

काली०—अब तो सुनाना ही पड़ा, अच्छा तो सुनियेः—

(गायन)

हमारे दिलके रखनेका ठिकाना भी बना लेना।
बिना परखे खरा खोटा, न उल्टा ही फिरा देना॥
निगाहे चार होते ही, मैं शैदा हो गया प्यारी !
फकत बदनाम दुनियाँमें, मत हमको करा देना॥
मेरा भी नाजसे पाला हुआ हैं, दिल ये पहलूमें।
न लेकर इसको बेदर्दीसे, मिट्टीमें मिला देना॥
हमेशा मौत ही अंजाम होते इश्कमें देखा।
कफन इस हुस्नका मेरे, जनाजे पै उढ़ा देना॥

(सबका वाहवाहीका धुन बांध देना)

रजिया०—वाहवाह ! सदके जाऊँ, इन प्यारे बोलोंके।

मनो०—अहा हा हा ! क्या उत्तर दिया है, वाहवाह !

सरगया–(सर हिलाता हुआ) सुभान अल्लाह ! सुभान अल्लाह !

रजिया—(कालीदाससे)

"याद हरदम आयगा, यह दिल चुराना आपका।
मैं तो दिल अब दे चुकी. आगे निभाना आपका॥"

कालौ०—"क्यों नहीं करेगा घाव ये, दिलपर निशाना आपका ॥
जान ही लेगा मेरी, ताने पै ताना आपका ॥"

सारंगिया—"अल्लाह करे कायम रहे, यह मन मिलाना आपका।
आप देखें इनको, ये देखें जमाना आपका ॥"

मनो०—रजिया ! तेरे ही भाग्यसे आना हुआ है आपका।
शहरके धनियोंमें है, एक ही घराना आपका ॥"

रजिया—बेशक बेशक ! आज मैं किसी अच्छेका मुँह देखकर उठी हूं।

काली०—बस करिये, अब और तारीफोंका पुल न बाँधिये, मैं तो एक बनियाँ हूं बनियाँ।

रजिया—क्यों नहीं, क्यों नहीं :—

"बड़ाई बोलमें दिख जाती है, कब रुकके रहती हैं।
फलोंसे पुर हुई डाली, हमेशः झुकके रहती हैं ॥"

(तबले और सारङ्गीवाले झोंके खाने लगते हैं)

मनो०—(दोनों ऊँघनेवालोंको दिखाता हुआ) जरा इधर भी तो देखिये :—

आप दोनों प्रेमकी, नोकें लड़ानेमें लगे।
मैं रहा चुप मारके, ये झोके खानेमें लगे।"

(सब हँस पड़ते हैं, सफरदे चौंक उठते हैं)

मनो०—और क्या। न गाना न बजाना, वृथा समय बिताना है

काली०—अच्छा ! तो प्यारी एक गाना और हो जाये।

रजिया—बहुत खूब। सुनिये, सुनिये।

ज्योंही रजिया पहली तान छेड़ती है, त्योंही एक पुरबिया, ऊँची धोती

मिरजई और दोपलिया टोपी पहने बीचमें आ कूदता है और फिर डरकर पीछे खड़ा होता है। सब हंसने लगते हैं)

मनो०—(डपटकर) अबे उल्लू के पट्ठे! तू कहाँसे आ धमका?

पुरबिया—(डरता हुआ, हाथ जोड़कर) महाराज! हम जनली यठिन हमार बकरी चल आयल बाय, सुनलीं तो चल अइलीं।

मनो०—(उठकर डपटता है। पुरबिया डर जाता है)अरे मनुष्यकी सूरतमें बैल! यहाँ गाना बजाना होता है, कि बकरी बोलती है?

पुरबिया—हूं हूं; तूं सभे गावा बजावाला? ई सब दोगला राग रागिनी गाना बजाना कहावाला?

काली०—तो यह यदि दोगली राग रागिनी हुई तो भाई शुद्ध राग रागिनी क्या हुई?

पुर०—सुना, हम सुनाई ला :—

(एक बिरहा गाता है। सबका देख देखकर हँसना। गाना खतम होते ही मनोरंजन उठकर डपटता है)

मनो०—चल, भाग यहाँसे गधा कहींका, (पुरबियेका भाग जाना) घनचक्करने तानका सारा मजा ही बिगाड़ दिया।

(सबका हँसने लगना, इतनेमें दो बजेका घण्टा बजना)

काली०—(ताज्जुबसे) हैं! आज तो बातों हीमें रातके दो बज गये! प्यारी रजिया! अब मैं तुमसे बिदा होता हूं।(उठता है, साथ ही सब उठ खड़े होते हैं।)

रजिया—(उदासीसे) तो फिर कबतक जुदाई सहनी पड़ेगी?

काली०—(प्यारसे) न घबराओ, मैं रोज ही आऊँगा! तुम्हें कभी न भुलाऊँगा :—

"फस गया मन सुन्दरी! सच्चे तेरे इस प्यारमें।
मुँह न मोड़ूँगा अगर जीवित रहा संसारमें॥"

मनो०—(स्वतः)

"काम अपना बन गया, जब तुम फसे इस कारमें।
मैं बनूँगा शाह, तुम कङ्गाल होगे प्यारमें॥"

रजिया—तो कल जरूर तशरीफ लाना, ज्यादः न सताना। (मनोरजनसे) और आप जरा साथ चले जाना। घर भी देख आना।

काली०—(मनोरजनसे) हाँ, हाँ, हर्षसे चलकर मेरी झोपड़ी पवित्र करिये।

(कालीदासका जेबसे सौ रुपयोंका नोट निकालकर रजियाको, और दो दो रुपये सफरदाओंको देना। सफरदाओंका सलामकर जाना)

मनो०—(स्वतः) और किसी बहाने कुछ हजम करिये (प्रकट) हाँ हाँ, चलिये चलिये।

(आगे आगे कालीदासका जाना। कुछ दूरतक रजिया तथा मनोरंजनका कालीदासके साथ जाकर फिर पीछे हट, हाथ मिलाकर हँसना)

मनो०—क्यों कैसा फसाया?

रजिया—वाह! प्यारे वाह! तुमने तो कमाल कर दिखाया। मगर देखना हाथसे जाने न पावे!

मनो० —देखो तो सही, थोड़े ही दिनोंमें उधरका सारा माल इधर होगा। बस जाओ, अब मैं जाकर उसका घर देख आऊँ।

(दोनोंका जाना)

दृश्य दूसरा।

(अंगरेजी सूट बूट पहने मि० डफालचन्द बी० ए०
एल० एल० बी० का प्रवेश।)

डफालचन्द—(मूछोंपर ताव देता हुआ) भाइयो! मेरा नाम है मिस्टर डफालचन्द, बी० ए० एल० एल० बी० वकील हाईकोर्ट। मैं तुमको सलाह देता हूँ, कि सबसे पहिले विवाह करो, अवश्य विवाह करो। यदि कुँवारी स्त्री न मिले तो व्याहतासे करो, जवान न मिले तो बुढ़ियासे ही विवाह करो। पूछिये, किस लिये? तो इस लिये, कि पकी पकाई रसोई खानेको तो मिलेगी? घर गृहस्थों-में मान तो होगा? बाप दादोंका नाम तो चलेगा? संसारमें प्लेग महामारीके कारण ये जो प्रतिदिन लोग मरते जाते हैं सो तो पूरे होते रहेंगे? और सबसे बड़ी बात तो यह है, कि विवाह करनेपर एकसे दो, एक वर्ष पीछे तीन, दो वर्ष पीछे पाँच, फिर छः, फिर सात, बस इसी तरह बढ़ते बढ़ते एकसे सत्रह और सत्रहसे सत्तर हो जाओगे। क्यों! ठीक है न? कह दो ठीक है। नहीं तो क्या? आज कलके आधी अक्लवाले कहते हैं, कि विवाह मत करो, नहीं तो कैदखानेमें पड़ जाओगे। परन्तु मैं दिन रात परमात्मासे यही मनाता हूँ, कि कुँवारे जन्म लें पर मरें नहीं। लोग मुझे कहते हैं, कि मिस्टर डफालचन्द भाग्यके बड़े हेंठे हैं, सचमुच जब न्यायकी कसौटीपर मैंने इस बातको परखकर देखा तो सोलहो आने ठीक बिटरका सोना पाया। मेरे हतभाग्यका पहला प्रमाण यह है, कि अभी मेरे जन्म लेनेकी तैयारी ही हो

रही थी, कि संसारमें कलियुग महाराजने अपना सिक्का जमा लिया। अभी मेरी माताने गर्भधारण किया ही था, कि मेरे पिता अमानतमें ख़यानत करनेके अभियोगमें तीन मासके लिये जेलखानेमें रामराम जपने चले गये। जब मुझे गर्भमें आये आठ मास भी नहीं हुए थे, कि बंबईमें प्लेग और मारवाड़में अकाल महाशयका आगमन हो गया। जब मैंने जन्म लिया तो मेरे कुलके संबंधी घटने लगे। जब स्कूलमें पढ़ने गया तो सौमेंसे निनानवे लड़के मेरे क्लासके फेल होने लगे। किसी तरह तीन बरस फैल होनेके पश्चात् थर्ड क्लास वकालत पास की तो अदालतके मामले पञ्चायतमें निबटने लगे। झूठ सच बोलकर जो दो चार रुपये रोजकी आय थी, सो पञ्चोंकी भेंट होने लगी। बस यह समझ लो, कि जिस तरह पुलिसके रजिस्टरमें नम्बर दसके बदमाश होते हैं, उसी तरह भाग्यके रजिस्टरमे मेरा नाम दसके भाग्यहीनोंमें है! परन्तु एक बात है, कि स्त्रीके संबंधमें मेरा भाग्य हिमालय पहाड़की ऊंचाईसे भी सवा सात फूट आगे बढ़ गया है! वाहवाह! क्या स्त्री मिली है, खासी इन्द्रके अखाड़ेकी परी। बस यदि उसमें कुछ अवगुण है तो केवल इतना ही कि समझ उलटी और स्वभाव सड़ा हुआ। मै पूरब चलनेको कहता हूं, तो वह पश्चिम चलती है। मैं विहाग छेड़ता हूं तो वह भैरवी गाती हैं। मैं अपना ढोल पीटता हूँ तो वह अपनी डफली बजाती है, यानी अपनी अढ़ाई चावलकी खिचड़ी अलग ही पकाती है। अच्छा जी, जब दुनियाँ सुधर रही है तो वह भी सुधर जायगी।

(नसीबोका प्रवेश)

नसीबी— (आते ही डफालचन्दकी पीठपर हाथ रखकर) क्यो जी ! तुम अभीतक यहीं खड़े हो ? मैं तो समझती थी, किसी खचड़ी गाड़ीपर चढ़कर अदालत पहुँचे होगे।

डफाल०—(चिढ़कर)अरी कोई मुकद्दमा भी पाऊँ या अदालतमें जाकर केवल टेबिल-कुर्सीसे माथा मारकर फिर आऊँ।

नसी०—तो घरमें बैठकर क्या करोगे।

डफाल०-करूँगा क्या। जिस तरह वहाँ बैठा बैठा मक्खियाँ मारा करता हूँ, उसी तरह यहाँ बैठा बैठा झख मारूँगा।

नसी०—अजी, मैं पूछती हूँ कि जब तुम्हें महीनेमें दो मुकद्दमे भी नहीं मिलते, तो वकालत पास करनेकी क्या पड़ी थी ?

डफाल०-यह विश्रामघाटमें जाकर मेरे पिताजीसे पूछ आओ, जिन्होंने वकालत पढ़ायी। (गुस्सेसे) क्या करूँ ! मर गये, नहीं तो पूछता कि मुझे और कोई व्यापार क्यों नहीं सिखाया ; जिससे जेबमें रोज सौ पचास रुपये भरकर लाता, तुम्हारी इस कञ्चन कायाको हीरे और पन्नेसे जड़वाता और मनमानी मौज उड़ाता।

नसी०—तो तुम्हारे पिताने तुमको वकालत क्या पढ़ायी मानों शत्रुता की।

डफाल०—इसमें क्या सन्देह है। क्या कहूँ, प्यारी नसीबो ! यदि परमात्मा जन्म देनेके पहले मुझसे पूछता तो मैं ऐसे पिताके घर जन्म ही नहीं लेता।

नसी०-जब वकालत नहीं चलती तो कोई अच्छी नौकरी ही क्यों नहीं कर लेते।

डफाल०—(चिढ़कर) उँह, नौकरी कहीं भीखकी तरह मिलती है, कि जाऊँ और माँग लाऊँ ? आजकल अच्छे अच्छे बी० ए० एम० ए० दस दस रुपयेकी नौकरीके लिये, अस्पतालमें रेलमें, जेलमें, ट्राममें, गोदाममें, तारमें, अखबारमें, शहरमें, नहरमें, पैरमें चीथड़े बाधे हुए—"बरसो राम धड़ाकेसे, बुढ़िया मर गई फ़ाकेसे" की पुकार करते हुए हरएकसे बिनती करते फिरते हैं, और फिर भी धक्के खाते हैं।

नसी०—तो फिर ?

डफाल०—फिर क्या ? मैं उस समय नौकरी करूँगा, जिस समय नौकर रखनेवाला हमारे घरपर आये, हाथ पाँव जोड़कर मुझे मनाये, और कहे, कि यदि तुम काम नहीं सम्हालोगे तो संसारका दिवाला निकल जायगा, और इसपर भी काम करूँ या न करूँ, घर बैठे उन्नीसवें दिन मुझे आकर तनखाह दे जाये, तब तो नौकरी करनेकी मनमें भाये ?

(प्रस्थान)

(इतनेमें अन्दरसे घड़ीके बजनेकी आवाज आती है और नसीबा गिनती जाती है।

एक, दो, तीन, चार, पाँच, छः, सात, आठ, नौ, दस, ग्यारह, बारह, तेरह, चौदह, पन्द्रह, सोलह, सत्रह, अररर मुई तो बजती ही चली जाती है ?

(कल्लू नौकरका हाथमें डण्डा लिये आना)

कल्लू०—धत्तेरेकी ! सच कहा है। लातोंका देवता बातोंसे नहीं मानता। टिक् टिक् टिक् टिक् टिक् टिक् किये ही जाती थी।

नसीबी—कल्लू ! ओ मुवे कल्लू ।

कल्लू०—(नेपथ्यकी तरफ देखता हुआ) ऊँ हुँ, टिक् टिक् टिक् टिक् टिक् टिक् ।

नसी०—अरे ओ मुवे ! टिक् टिक्के बच्चे ! इधर देख ।

कल्लू०—कौन ! मालकिन ! हट जाइये, मुझसे दूर रहिये । नहीं तो बुरी होगी । मुझे इस समय चारो ओर खून ही खून दिखायी देता है । मैं डण्डेको दूर फेकता हूँ, पर यह फिर मेरे हाथोंको पकड़ लेता है । टिक् टिक् टिक् टिक् टिक् टिक् टिक् ।

नसी०—तो क्या इस डण्डेसे अपना मुँह सर फोड़ेगा ?

कल्लू०—अपना सर क्यों फोड़ूँगा ? क्या दूसरोंका सर बन्धक रक्खा हुआ है ? टिक् टिक् टिक् टिक् टिक् !

नसी०—परन्तु, तू इस समय पागल कुत्तोंकी तरह क्यों बौराया है, हुआ क्या ?

कल्लू०—हुआ क्या ? जब तड़से डण्डा जमाया तब मिजाज ठिकानेपर आया ।

नसी०—अरे किसपर डण्डा जमाया ! किसका मिजाज ठिकानेपर आया ?

कल्लू०—उसी पागल और झक्की घड़ीके, जो आपके शयन-गृहमें शीशेके टेबिलपर पड़ी है ।

नसी०—(ताज्जुबसे) वही जो एक सप्ताह हुआ, डेढ़ सौमें खरीद कर आयी थी ?

कल्लू०—जब आपने उसका दाम डेढ़ सौ रुपये लगाया तभी तो उसका मिजाज बिगड़ गया । वह समझने लगी थी,

कि ड़ेढ़ सौवालीको पाँच रुपयेवालेकी आज्ञा माननेकी क्या आवश्यकता है। बस यही झगड़ा था।

नसी०—परन्तु तूने उसे क्या किया ?

कल्लू०—जब मैं आपका भोजन बनानेसे खाली हुआ, तो जरा कमर सीधी करनेके लिये आपके शयनगृहके बाहर लुढ़क गया और मुझपर निद्रादेवीने अधिकार जमाया। मैं आरामसे मीठी नींदमें खुर्राटे भरने लगा तो वह देखकर जल गयी और मेरी नींद खराब करनेके लिये टिक् टिक् टिक् टिक् करने लगी। मैंने कहा, बहन जरा शान्त हो। मैं सोकर उठूं तो जितना चाहो टिक् टिक् कर लेना; परन्तु उसने न माना। फिर कहा कि माता मान जा, उसपर भी नहीं मानी। अन्तमें उठकर हाथ जोड़ा, पाँव पड़ा, नाक रगड़ा, फिर भी वह कुसमयकी शहनाई बजाती ही रही। तब तो मेरा भी मिजाज गरमा गया और उसपर गहरा गुस्सा आ गया, बस फिर क्या था, मैंने भी तानकर ऐसा डण्डा जमाया कि उसको छट्ठीका दूध याद आया!

नसी०—अररर क्या तूने डण्डा जमाया ? हैं, हैं, मुए! यह तूने क्या किया ?

कल्लू०—जी हाँ, केवल एक ही डण्डा जमाया और सीधा यहाँ चला आया।

नसी०—अरे मूर्ख! तब तो वह चूर चूर हो गयी होगी!

कल्लू०—जी हाँ, परन्तु देखिये उसकी दुष्टता, कि चुप रहनेके बदले और दूनी खट् खट् करने लगी।

नसी०—(दाँत पीसती हुई) अरे बैल! कहीं घड़ीके भी कान

होते हैं जो तेरी आवाज सुनकर चुप हो जाती ?

कल्लू०—कान नहीं होते तो आप चाभी किसमें दिया करती हैं ?

नसी०—(गुस्सेसे) परमात्मा तेरा सत्यानाश करे। मुए तूने मेरी दामी घड़ी तोड़ डाली।

कल्लू०—स्वामिन ! आप चिन्ता न करिये, कुछ हानि नहीं हुई ! केवल कमानी टूट गयी है, चक्कर बिगड़ गया है, शीशा चूर हो गया है और उसके अन्दरवाला लङ्गर जो हाथीके सूँड़के समान हिला करता है वह अलग हो गया है और बाकी राजी खुशी हैं।

नसी०—(स्वतः) लो सुनो ! दुष्टने घड़ीके अञ्जर पञ्जर तो ढीले कर दिये और फिर कहता है कि सब ठीक हैं। जैसा पति वैसा ही नौकर भी मिला है। (कल्लूकी पीठपर थप्पड़ मारकर) दुष्ट ! तूने बड़ा नुकसान किया है। (कुढ़ती हुई चली जाती है)

कल्लू०—(पीठ सुहराता हुआ) हाय ! हाय !! इस शहरमें कोई बुद्धिमान आदमी नहीं हैं ! मैं अच्छा कहता हूं तो लोग बुरा कहते हैं। कुछ दिन पहिले मैंने वहांके "पक्षपात समाचार पत्र" के सम्पादकके यहाँ नौकरी की तो वहाँ यहाँसे भी बढ़कर सम्मान हुआ। एक दिन सम्पादक महाशयने पुकारा-"अबे काल्लू" मैंने कहा "जी जनाबे आलू।" उन्होंने कहा "पास आओ" मैंने कहा—"उपस्थित हूं, सुनाओ।" इसपर उन्होंने कहा—सोता हूं, तुम रुमालसे मक्खियाँ उड़ाओ।" मैंने पङ्खा झलना शुरू कर दिया। इतनेमें न मालूम चार पाँच मक्खियाँ कहांसे भिनभिनाती हुई आ पहुंची और सम्पादकजीकी नाकपर बैठ

गयीं। मैंने कहा—"चली जाओ" पर वे नहीं गयीं। मैंने कहा "उड़ जाओ" नही उड़ीं। अन्तमे मैंने डरा धमकाकर भगाया। परन्तु परमात्मा जाने सम्पादकको नाकपर कहाँसे ऐसा रसगुल्लेका रस लगा था कि वह फिर चाटने आयीं। फिर उड़ा दिया, फिर आयीं। तब मेरे हृदयमे नमकहलालीका ऐसा रक्त दौड़ आया, कि मैंने चट क्रोध महाशयको बुलाया और सम्पादकजीकी नाकपर ज्योंही वे आकर बैठीं, त्योंही मैंने दम्रसे सोटा जमाया। परन्तु भाग्यको देखो, कि सम्पादकजी तुरन्त ही नाक पकड़े चिल्लाकर उठ खड़े हुए और "अररर मेरी नाम" कहकर चिल्लाने लगे और मुझे मार मारकर बाहर निकलवाने लगे। हम भी सम्मान पाकर घरकी ओर जाने लगे। भाग्यसे रास्तेमे इन वकील साहबने देखकर बुलाया और पाँच रुपये महीनेपर मुझे नौकर रखकर मेरा आँसू पोंछ दिया। अब मित्रो! तुम्हीं बताओ, सम्पादक-जीका मैंने क्या अपराध किया, जो उन्होने मुझे मार भगाया? यदि आप कहें कि मेरे डण्डेसे उनकी नाक टूटी तो मैं कहूँगा, कि मक्खियोंसे तो उनको जान छूटी! क्यो हूं न मैं समझदार! वाहवाह मेरा माथा है कि बुद्धिका भण्डार!!

(गायन)

मर्द मर्दाना हूं, दुनियाँका सयाना हूं, मेरा ये गाना हैं नाम ॥२॥
झाँसा लड़ानेका उल्लू फँसानेका सारे ज़मानेका करता हूं काम ॥
फिर भी देता नहीं यह भाग्य गवाही मेरी।
लात घूँसोंसे ही होती है कुटाई मेरी॥

कहीं बुद्धी भी कभी काम न आई मेरी।
जहाँ जाता हूं बस होती है बिदाई मेरी॥
पैसा कमानेका, रोटी भी खानेका, चलता न चारा न मिलता आराम।॥ मर्द॥

(प्रस्थान)

दृश्य तीसरा।

(स्थान किशोरीलाल जमीन्दारका घर)

(आगे आगे किशोरीलाल, पण्डित अयोध्यानाथ और उनके पीछे साथमें माला लिये पण्डित धर्म्मदासका हर हर करते हुए आना और यथास्थान बैठ जाना)

किशोरीलाल—(अयोध्यानाथसे) गुरुदेव! आज तो कई दिनोंके पश्चात् आपके दर्शन प्राप्त हुए।

अयोध्या०—मैं कल भी उपस्थित हुआ था; परन्तु आप घरमें नहीं थे।

किशो०—यह मेरा दुर्भाग्य है, कि आप जैसे महात्मा पधारें और मुझे दर्शन न हो।

धर्म्मदास—हर हर हर हर! (किशोरीलालसे) आप सत्य कहते हैं। हर हर हर हर।

अयो०—किशोरीलालजी! आपके सम्मान भरे मधुर बचनों को सुनकर मैं मोहित हो जाता हूं। उत्तर देनेके लिये शब्द ढूंढ़ता हूं पर नहीं पाता हूं।

किशो०—(हंसकर) परन्तु आपहीके सत्संगसे प्राप्त हुए शब्द ही तो व्यवहारमें लाता हूं ?

धर्म्म०—हर हर हर हर, क्यों नहीं (अयोध्यानाथकी ओर संकेत कर) आप जैसे नीतिज्ञके सत्संगसे क्यों न लाभ होगा ?

सङ्गसे पुष्पको चन्द्र मिले, अरु संगसे लोहा स्वर्ण कहावे ।
सङ्गसे पण्डित मूर्ख बने, अरु संगसे शूद्र अमरपद पावे ॥
संगसे काठके लोह तरे, तनको सत्संग ही पार लगावे ।
संगसे सन्तको स्वर्ग मिले, अरु संग कुसंगसे नर्कमें जावे ॥

अयो०—धर्म्मदासजी ! आपके इन अमूल्य उपदेशोंको धन्य है । परन्तु आपने मुझे लक्ष्यकर इन शब्दोंसे जो मेरा मान बढ़ाया है, सो मैं इस योग्य नहीं ।

किशो०—आप भी एक प्रकारसे उचित ही कहते हैं, क्योंकि ज्ञानी-जन अपनी बड़ाई सुनकर प्रसन्न नहीं होते । अच्छा, इस प्रसंगको जाने दीजिये । पण्डित अयोध्यानाथजी ! यह बताइये, कि इस अमूल्य मनुष्यजन्ममें जीवन किस प्रकार व्यतीत करनेसे सुख मिलता है ?

अयो०—सुख सन्तनको सत्संगनसे, सुख धनसे नरतनधारीको ।
सुख पण्डितको सुन ज्ञानकथा, सेवासे पर उपकारीको ॥
सुख पावे नीच कुकर्म्मनसे, परनारीसे व्यभिचारीको ।
सबसे है विशेष सुखीजन वो, जो नित सुमिरें बनवारीको ॥

किशो०-धन्य हैं ! धन्य हैं ! हा ! इस जीवनके अमूल्य श्वास वृथा ही जाते हैं, परन्तु आजकलके अविचारी मनुष्य प्रतिदिन [illegible] अब मैं [illegible] कुछ समय उसके

दुर्लभ जन्मको मृत्युका शिकार बनाते हैं। इस कारण मेरी इच्छा है, कि मैं अपनी अल्पबुद्धिसे यथाशक्ति एक ऐसा ग्रंथ निर्माण करूँ, जिससे हमारे अशिक्षित समाजको लाभ उठानेका अवसर हाथ आये और बहुत दिनोंकी बिगड़ी हुई दशा फिर सुधर जाये।

अये०—मैं आपके यह उत्तम विचार सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ। हमारा कर्तव्य है, कि इस समय जो जो भ्रष्ट और दुःख-दायक कर्म्म, व्यभिचार और कुशिक्षाके कारण प्रतिदिन बढ़ते जा रहे हैं, वह सामाजिक नाटकों द्वारा दूर किये जायें। यदि पढ़े लिखे सज्जन इस ओर ध्यान न देंगे, तो बहुत शीघ्र हमारी उन्नतिके मार्गमें कांटें बिछ जायंगे; क्योंकि—

चलते हैं लोग आजकल ऐसी कुचालपर।
सब धर्म्म, कर्म्म शर्म्मको फेंका निकालकर॥
पायें जो धन बड़ोंका, न रक्खें सम्हालकर।
करते हैं निछावर उसे वेश्याके गालपर॥
आती न दया कुछ भी, गरीबोंके हालपर।
नेकी तो रही दूर, कपट बालबालपर॥
नीती न भली बात है, आती खयालपर।
उलटे ही बिगड़ जाते हैं, अच्छे सवालपर॥
फिरते हैं अकड़सेठ बन, औरोंके मालपर।
पाया सो हजम, देते न, देना निकालकर॥
देते हैं दोष पुरखोंकी, अब चाल ढालपर।

पहरा जो सूट बूट, चले हाथ डालकर।
नारीने लिया पोत, ज्यों चूना दीवालपर।
होती नहीं है तृप्ति भी, रोटी दालपर।
जबतक न पड़ें पेटमें, अण्डे उबालकर॥
कुपुत्र ही घर घरमें मिलें, देख-भालकर।
छोड़ा जिन्होंने देशको, पूरा कंगालकर॥
इक पल न ध्यान आयगा, उस नन्दलालपर।
डूबे रहेंगे ऐशमें सब, साल साल भर॥

किशो०—आप सत्य कहते हैं। हा! जिस प्रकार मोर नाचता नाचता अपने पैरोंकी ओर देखकर अपने आपको धिक्कारने लगता है—ठीक वैसीही मेरी दशा अपने पुत्रके कारण हो रही है।

धर्म्म०—हर हर हर हर!!

अयो०—क्या करूँ? मैं स्वयं आपके पुत्र कालीदासको प्रतिदिन व्यभिचारमें ही लिप्त देख देखकर अत्यन्त दुखी रहता हूं, परन्तु आप धैर्य्य धरिये। जब तक वह ठोकर नहीं खायगा तबतक आपके हाथ नहीं आयगा।

बिगड़ा मन माने नहीं, जबतक खता न खाय।
जैसे विधवा भार्य्या, गर्भ रहे पछताय॥

धर्म्म०हर हर हर हर! आप उचित ही कहते हैं।

किशो०—परन्तु चुप रहनेसे तो और भी निडर होकर वह अपने कुकर्म्मोंकी मात्रा बढ़ाता ही जायगा।

अयो०—अच्छा, अब मैं भी यथाशक्ति कुछ समय उसके

उपदेशार्थ दिया करूँगा।

(कालीदास और मनोरञ्जन आते हैं।)

कालीο—पिताजी प्रणाम! गुरुजी नमस्कार पुरोहितजी दण्डवत।

किशोο—तुम्हारे साथ आए हुए सज्जन किसी धनाढ्यके पुत्र ज्ञात होते हैं?

कालीο—हाँ पिताजी! ये मेरे मित्र हैं।

मनोο—मैं मित्र कालीदासके साथ, आपके दर्शन करने आया हूँ।

किशोο—(मनोरञ्जनसे) आपने यहाँ पधारकर मुझपर बड़ा अनुग्रह किया। यह आपका ही घर है, परन्तु आपने कालीदास-के सम्बन्धमें जो मित्रताका शब्द कहा, उसका निभाना तो बड़ा कठिन है, क्योंकि आजकलकी मित्रता न तो चिरस्थायी होती हैं और न स्वार्थसे ही खाली होती है। तो आपका इनका सम्बन्ध भी किसी कारणसे ही होगा।

मनोο—(स्वतः) यहाँ तो अपनी टीपटाप नहीं चलनेकी। बस किसी तरह यहाँसे हटना चाहिये। (प्रकट) आप ठीक कहते हैं, परन्तु पाँचों ऊँगलियाँ समान ही नहीं होतीं।

किशोο—तो ज्ञात हुआ, आप किसी विद्वानके शिष्य हैं।

धर्म्म—(मनोरंजनसे) आप भगेलू लुहारके पुत्र हैं न?

मनोο—(स्वतः) अररर! यह मुझे पहचान गया। (प्रकट जी हाँ, पर मैं आजकल उनसे पृथक होकर दूसरा ही व्यापार करता हूँ। अब मैं लुहार नहीं हूं।

किशो०—जो हो, मैं अच्छी तरह समझ गया, कि तुम अमीरोंकी सन्तानोंको व्यभिचारमें फँसाकर उन्हींके पैसेसे आप रईस बने जाते हो।

मनो०—(स्वतः) बस चल दूँ यहाँसे। (प्रकट) क्षमा मैं केवल कालीदासके कारण आपसे मिलने और देखने आया हूँ, न कि अपना हुलिया लिखवाने। बस राम राम! (जाता है)

(कालीदास मनमें कुढ़ता है)

किशो०—कालीदास! सम्हल जाओ। ऐसे ऐसे नीचोंकी सङ्गतिमें पड़कर अपना नाश न कराओ। अब भी अपने आपको इस नरककुण्डमें गिरनेसे बचाओ और अपने पिताकी आत्माको न दुखाओ।

अयो०—(कालीदसको) देखो, इनके वचनोंको भूलो मत ऐसी मित्रताको दूर हटाओ :—

वह मित्र तजो नहिं सङ्ग करो-निज स्वारथ देख जो मित्र बनाये।
वह मित्र नहीं शत्रु समझो—कभी जो न भला उपदेश सुनावे॥
धन देखके मित्र हजार बनें—धन पास नहीं तो कोई न बुलावे।
दुख जान जो आन सहाय करे बस मित्र वही जगमाहिं कहावे॥

किशो०- सुना! मित्र कैसा उचित है?

काली०-पिताजी! आप तो हरघड़ी वृथाही मेरा अपमान किया करते हैं।

अयो०—परन्तु जो कहते हैं, तुम्हारी भलाईके लिये कहते हैं :—

वह मात-पिता शत्रू जानो—जो बालकको कर प्यार मनावें।

जब सम्मुख बोलकी बान परी, तज मान वही फिर आन दबावें ॥
मनमानि करे जब बालक तो, फिर मात-पिता पीछे पछतावें ।
इस कारण मातपिता है वही—जो ताड़त ताड़त बात सुनावें ॥

काली०—(गुस्सेसे उठकर) जब ऐसा ही बर्ताव होना है तो मैं आपके पास नही रहूँगा ।

किशो०—(क्रोधसे) अच्छा तो जा, चलाजा । मुझे अपना पाप मुँह न दिखा । जा, जा, (कालोदासके जानेपर) मेरा भाग्य ही फूट गया तो अब क्या चारा है ।

अयो०—शान्तिसे काम लीजिये । यह शीघ्रतासे सिद्ध होने वाला कार्य्य नहीं है । चलिये, कहीं घूम फिरकर दूसरी ओर ध्यान लगाइये ?

किशो०—(उठकर) अच्छा, कुछ दिन और देखता हूं ।

(सबका प्रस्थान)

दृश्य चौथा ।

(स्थान—एक जङ्गलकी पगडण्डी ।)

(कालीदासका प्रवेश)

कैसे कटेगी, प्यारी बिना सुखसे ।
है प्रेमका पन्थ न्यारा, प्रेमीको प्रेम पियारा, लीला है हरकी !
प्रेमीका जीवन बीते सदा सुखसे ॥ कैसे ॥

प्रेम पियाला पी लिया तो जीवनकी क्या आस ।
जितना पीवे प्रेम रस, उतनी बढ़े पियास ॥

हो मृगनयनी यदि नारी, मारे वह नयन कटारी, क्या शक्ति नरकी, रोकेगा मनको, बोल सके मुखसे ॥ कैसे ॥

कालीο—अब मैं अपनी जमीन्दारीके निकट ही आ पहुंचा। बस वहाँ पहुंचकर पिताके नामसे कुछ रुपये माँग लाऊं और फिर प्यारी रजनीके पास रहकर आनन्दके साथ दिन बिताऊँ।

(कालीदास खड़ा सोचता है, इतनेमें दो डाकू आते हैं।)

एक डाकू—यार, मुर्गी तो मोटी है।

दूसरा डाकू—हाँ देखो, गलेमें सोनेकी सिकली और हाथोंमें हीरेकी अंगूठी है।

एक डाकू—तो क्या देखते हो बढ़ो न? (दोनों झपटकर कालीदासको रस्सीसे बाँधते हैं)

कालीο— (डरकर) भाइयो! मुझे क्यों बाँध रहे हो?

एक डाकू—(छूरी दिखाकर) बस खबरदार।

इतनेमें पिस्तौलकी आवाज आती है। दोनों डाकू भाग जाते हैं दुर्गादास हाथमें पिस्तौल लिये आता है।)

कालीο—आपने इस समय मेरी जीवन-रक्षा की। आपको किन शब्दोंमें धन्यवाद दूँ।

दुर्गाο—मैंने जो कुछ किया है, वह धन्यवाद लेनेकी इच्छासे नहीं, पर यह समझकर कि:—

वह मनुष्य किस कामका, जो किया न पर उपकार।
मीठा बचन न मुख बसा, तो जीवनको धिक्कार।

परन्तु यह तो बताइये, कि आपके इस जङ्गलमें निःशस्त्र आनेका क्या कारण हैं? और आप इस समय कहाँ जा रहे हैं?

कालो०—यह सब मेरी मूर्खताका कारण है, कि मैं निःशस्त्र अपनी जमीन्दारीकी ओर जा रहा हूं।

दुर्गा०-हाँ अब पहचाना, आप तो किशोरीलालजीके पुत्र हैं न?

काली०—परन्तु मैंने आपको नहीं पहचाना। आपत्ति न हो तो अपना परिचय दीजिये।

दुर्गा०—मैं भी आपके निकट ही बड़ेबाजारमें रहता हूँ, परन्तु आप मुझे नहीं पहचानते।

काली०—यह मेरा दुर्भाग्य है, कि मैं आपके निकट रहकर भी आपके अमूल्य गुणों और उत्तम उपदेशोंको ग्रहण न कर सका; परन्तु इस समय आपके उपकारने मेरे हृदयमें घर कर लिया है। इस कारण यदि आप मेरी प्रार्थना स्वीकार करें तो एक और भी उपकार करें।

दुर्गा०—हाँ हाँ कहिये, क्या सेवा करूँ?

काल०—यही कि······

प्रेम करें हिल मिल दोऊ, करें नेह रसपान।
मित्र कहावे जगतमें, दो काया एक प्रान॥

दुर्गा—धन्य हमारा भाग्य है, जो आप मित्र लें मान।
पूर्ण भई आशा मेरी, कृपा करी भगवान॥

परन्तु पहले यह तो बताइये, कि आपका यहाँतक आना किस कारण हुआ?

काली०—ऐसे ही घूमने फिरने चला आया।

दुर्गा०—नहीं नहीं, मित्र! आप अपना भेद छिपाते हैं, स्पष्ट नहीं बताते हैं।

समझे बिना तो मनका, मिलाना नहीं अच्छा।
मित्रोंसे हाल अपना, छिपाना नहीं अच्छा॥
सुख दुखके लिये मित्र, बनाये हैं जगतमें।
हो प्रेम जहाँ हीला, बहाना नहीं अच्छा॥

काली०—मित्र! मैं अपनी अवस्था क्या सुनाऊँ!

चल पड़ा घरसे, किसीको जब न मैं प्यारा हुआ।
रूप सुन्दर भागया एक, यह सबब सारा हुआ॥
होती रहती है कलह, दिन रात ही घरमें मेरे।
हाल मेरा है यही, हूं प्रेमका मारा हुआ॥

दुर्गा०—परन्तु मित्र!

फूलते फलते न देखा, प्रेमका मारा हुआ।
बस गया मनमें जहाँ, दुनियामें बेकारा हुआ॥
है नहीं कोई दवाई प्रेमके बीमारकी।
मौत बिन मरता है वो, दर दरसे फिटकारा हुआ॥

अच्छा, आइये मैं आपको इस बन्धनसे छुड़ाकर अच्छा मार्ग दिखाऊँगा।

(दोनोंका प्रस्थान)

दृश्य पाँचवाँ ।

(स्थान—एक घरका दालान ।)

(कमला, मनोरमा और दासियोंका प्रवेश)

(गायन)

मुख काहे मलिन भयो मोरी प्यारी ।
कहाँ गई रस भरी बतियाँ ॥ मुख काहे ॥
काहेको सोच सखी मन लावो ।
मनका दुख मनमें न छिपावो ।
युक्ती करें कहो हम सखी सारी ॥ मुख ॥

कमला—प्यारी मनोरमा ! मैं बहुत दिनोंसे देख रही हूं, कि तुम प्रतिदिन चिन्तारूपी ज्वालामें जला करती हो । इसका क्या कारण है ?

मनो०—बहन कमला ! कारण क्या बताऊँ ? क्या तुम नहीं जानती हो ?

है नारका पूजनहार पति, शृङ्गार पती, सरदार पती ।
करतार पती, आधार पती, संसारमें है सुखसार पती ॥
फिर नारीका पती त्याग करे, कुछ भी न करे जो विचार पती ।
तब कौन गती, फिर नारीकी ? तज नार करे व्यभिचार पती ॥

कमला०—धैर्य धरो बहन, धैर्य धरो ! जितने दिन उसकी मति भ्रष्ट रहे, उतने दिन शांतिसे काम लो । मैं भी यथाशक्ति अपने भाई कालीदासको समझाऊँगी और तुम्हारा कष्ट मिटाऊँगी ।

मनो०—बहन! धैर्य कैसे धरूं? मैंने उन्हें वशमें लानेकी इच्छासे अनेक प्रकारके यत्न किये। परन्तु हाय! मेरे मर्म्मभेदी शब्द उन्होंने एक कानसे सुने और दूसरेसे निकाल दिये।

कमला—(सामने देखकर) तो ठहरो, वे आ रहे हैं। आज मैं उन्हें समझाती हूं।

(कालीदासका आना और मनोरमाका सर झुकाना। कालीदास चुपचाप एक कुर्सीपर बैठकर कुछ सोचता है।)

मनो०—(हाथ जोड़कर कालीदाससे) नाथ! क्या आपको मेरा मुँह देखना भी पाप जान पड़ता है?

काली०—हैं! फिर वही रामकहानी? मैं वृथा दुर्गादासके कहनेपर चला आया।

कमला—भाई कालीदास! कुछ तो विचार करो, कि तुम्हारे सिवा मनोरमाका और कौन है?

काली०—(चिढ़कर) कमला! तुम सब इस समय जाओ, मुझे कुछ विचार करने दो।

कमला—(मनोरमासे) चलो, फिर जरा ठहरकर आना, तब इन्हें समझाना।

(दोनोंका जाना, मनोरमाका लौट आना)

मनो०—(कालीदाससे) प्राणनाथ! मुझको क्यों त्याग दिया?

ब्याह कर लाये, न बोली प्रेमकी बानी कभी।
किस तरह रह सकती है, मछली बिना पानी कभी॥
जब मुझे स्वामी जगत्में आप ही आधार हैं।
मन मेरा किसको दिया, मेरी नहीं मानी कभी॥

काली०—छिन गया यह मन मेरा, एक रूप सुन्दर भा गया।
एक ही था प्रेम जिसके भाग्यमें था पा गया ॥
मनो०—निज नार तो भाती नहीं, ऐसा ज़माना आ गया।
व्यभिचारका चारों तरफ, घनघोर बादल छा गया ॥
है नार तो सब एक सी, पर रङ्ग हैं बदले हुए।
कैसी समझ उलटी भई, घर घरमें जाना भा गया।
पैसे बिना सेवा करें, जो दुःखमें साथी बने।
उनको रोते छोड़कर, दौलत लुटाना आ गया।
काली०—आनन्द वो घरमें नहीं, मिलता है जो बाजारमें।
भोगें न क्यों हम भी भला, जो है बना संसारमें ॥
मनो०—पैसा है जबतक गाँठमें, मरती हैं झूठे प्यारमें।
पैसा न दो तो आनकर, पकड़ेंगी वो बाजारमें।
रस रङ्ग है उनसे अधिक, सुख है सदा निज नारमें ॥
बाहर मजा जो हजारमें, वो घरमें रोटी चारमें।
आँख दिखलाकर न निकले, काम जो बाजारमें ॥
काम वो घरमें निकलता, एक ही दुतकारमें।
लाखोंकी इज़्ज़त राख हो, बेकार हो संसारमें।
अब छोड़ दो स्वामी, नहीं रक्खा है कुछ व्यभिचारमें ॥
काली०—हट नहीं सकता ये मन, अब फँस चुका जिस प्यारमें।
है वृथा उपदेश तेरा, मेरे मनकी कारमें ॥

(कालीदास जाना चाहता है। मनोरमा पल्ला पकड़ लेती है कालीदास लाल आंखें कर मनोरमाको ओर घूरता है।)

मनो०—नहीं नहीं, स्वामी! आपने अपना नाश करनेकी ठानी है।

कालीο—(क्रोधसे) अरी हठीली ! तू स्त्री होकर पतिको शिक्षा देती है। यही तेरी बुद्धिमानी है ?

मनोο—आपकी मति भ्रष्ट है और ज्ञान सारे खो गये।
जबसे व्यभिचारी हुए, निद्रामें गहरी सो गये ॥
सोच लो स्वामी ! ये शिक्षा है भलेके वास्ते।
स्त्रीकी शिक्षासे कई भगवत-भगत हैं हो गये।

कालीο—(डपटकर) बस चुप रह, तेरा यह उपदेश किसी काममें न आयगा।

मनोο—तो क्या मेरा जीवन यों ही मिट्टीमें मिल जायगा ?

कालीο—हाँ, हाँ, तेरे लिये मेरे पास मन नहीं है।

मनोο—हाय मेरा भाग्य......

कालीο—फूटा हुआ।

मनोο—मेरा प्रेम......

कालीο—बिका हुआ।

मनोο—मेरा ईश्वर......

कालीο—रूठा हुआ।

(कालीदास हाथके झटकेसे मनोरमाको ढकेलकर चला जाता है,
मनोरमा बेहोश हो जाती है, कमला और एक दासी
आकर देखती है और बैठ जाती है।)

कमलाο—हैं, हैं !! मनोरमाको क्या हुआ ?

(सर और पीठके नीचे हाथ देकर उठाती हैं)

(मनोरमाका गायन)

हे दई अब कासे कहूं मनकी।
तज गयो पति मोहिं विकलत सजनी ॥

मति क्यों भई दुर्व्यसननकी ।
मैं तो प्यासी रही दरशनकी ॥

(कमलाका गायन)

मन धीर धरो प्यारीके दिन सुखके आयेंगे ।
मत हिय कलपावो दुखड़े मनके जायँगे ॥ मन ॥
लेख ललाटके जो होवेंगे सब ।
दुख सुख करमोंके सब अपने पायेंगे ॥ मन ॥
जितने दिवस पियाकी मति है यों मारी ।
उतने दिवस ही तुमरा मन कलपायेंगे ॥ मन ॥
धीर बिना प्यारी कोई न चारा ।
बिनती करो नित हरसे दया लायेंगे ॥ मन ॥

(कमला और मनोरमाका प्रस्थान, कमलाका पुनः प्रवेश)

कमला—उँह ! (नेपथ्यकी ओर संकेत करती हुई) इनका तो आठ पहर और चौंसठ घड़ी यही झगड़ा लगा रहता है, पर हाँ मेरे लिये अच्छा है, कि प्यारे हरकिशोरसे मिलनेका अवसर हाथ आता है। इसी कारण पतिके घर नहीं जाती हूं और पिताके घर रहकर आनन्दके, दिन बिताती हूं। (सहसा कुछ सोचकर) परन्तु वह कौनसी स्त्री आयी है, जिसने मुझसे एकान्तमें मिलनेकी ठहरायी है ? दासी तो उसे लेकर अबतक भी नहीं आयी है। (नेपथ्यकी ओर देखती हुई) हाँ हाँ, वह आ रही है, पर यह यहाँ कैसे आ पहुँची ?

(एक बुढ़िया कुटनीका प्रवेश)

कुटनी—(चारों ओर देखती हुई कमलासे) क्या तुम्हारा ही नाम कमला है ?

कमला—हाँ, पर तू कहाँसे आयी है; किसका और क्या समाचार लायी है ?

कुटनी—(एक पत्र देकर) यह पत्र लो, मुझे बाबू हरकिशोरने भेजा है।

(कमलाका मुस्कुराते हुए पत्र लेकर चूमना और छातीसे लगाना)

कमला—(पत्र पढ़कर) अच्छा तू जा और कह दे कि रात्रिके बारह बजे वह चीज लेकर मैं अवश्य आऊँगी ! मैं इसी समय ससुराल जानेका बहाना करके जाऊँगी, और सुन (कुटनीके कानमें कुछ कहना)

कुटनी—तो अवश्य आना ।

कमला—कह देना कि, मैं अवश्य आऊँगी और तुम्हारा संकट मिटाऊँगी। (दोनोंका प्रस्थान)

दृश्य छठा ।

(स्थान एक कुटनीका घर ।)

(हरकिशोरका प्रवेश)

(गायन)

हर०—किस तरहसे हाय ! अपने मनको समझायेंगे हम ।
हाय ! फल किस रोज अपने प्रेमका पायेंगे हम ॥
प्रेमकी ज्वाला जगी हिरदेमें मेरे रात दिन ।
क्या उसी अग्निमें जलकर राख हो जायेंगे हम ॥
वाहरे तेरी मुहब्बतकी सजा कैसी मिली ।
क्या विरहमें तेरे प्यारी योंही मर जायेंगे हम ॥

(ठण्ढी सांस लेकर) हा! कमला! तूने मुझे कहींका न रक्खा। तेरे प्रेमने मेरा ज्ञान, ध्यान, बल, गुण, अभिमान, सब कुछ भुला दिया। तूने मुझे अपने रूपके पींजड़ेमें ऐसा फँसाया है, कि मैं विवश होकर केवल तुम्हारे दर्शनोंकी घड़ियाँ गिना करता हूं। हाँ, घर-गृहस्थोंकी ललनाओंसे प्रेम करनेमें यही दुःख है, कि समयपर मिलाप होना कठिन हो जाता है। अब क्या करूँ? किस प्रकार मनको शान्त करूँ? कमला! कमला!! मैं नहीं जानता था, कि तुम्हारे प्रेममें मुझे इतनी कठिनाइयाँ झेलनी पड़ेंगी, सच है।

प्रेमरस पीकर कभी, मिटती न प्रेम पिपास है।
सर्वदा दर्शनकी आशा, प्रेमियोंके पास है॥
प्रेम-बन्धनमें बँधा नर, शान्ति पा सकता नहीं।
प्रेमियोंने सच कहा, प्रेमीका जीवन नाश है॥

(सोचकर) परन्तु वह बुड्ढी अभीतक क्यों नहीं आयी। (नेपथ्यकी ओर देखकर) हाँ, आयी आयी!

(कुटनीका प्रवेश)

हर०—आओ बूढ़ी माई! कहो, क्या समाचार लायी?

कुटनी—बाबू साहब! मैं आपका काम कर आयी।

हर०—क्या सब कुछ कर आयी?

कुटनी—हाँ, पर बताऊँगी तब जब कुछ खिलाइयेगा मिठाई।

हर०—यदि तू मेरा काम कर आयी है तो तेरे वास्ते मुँह माँगी मिठाई है, बता बता, कमला तेरे साथ क्यों नहीं आयी है?

कुटनी—इस समय उसके आनेमें कुछ कठिनाई है, क्योंकि, उसके घरमें उसका भाई और भौजाई है।

हर०—तो फिर काम क्या पत्थर बना लायी है?

कुटनी—अजी सुनिये तो सही, आप तो वृथा ही मियानसे बाहर हुए जाते हैं, कहानी समाप्त होनेके पहिलेही गर्मी दिखाते हैं?

हर०—तो फिर सुना, वृथा समय क्यों बिताती है?

कुटनी—ओ, हो! आपको कमला इतनी प्यारी है? अच्छा तो सुनिये। जब मैं आपका पत्र लेकर गयी, तो उसने पत्र पाते ही उसे चूमकर छातीसे लगाया और अन्तमें मुझे यह उत्तर देकर लौटाया, कि मैं इसी समय किसी बहानेसे अपने पतिके घर जाऊँगी और रात्रिके बारह बजे तुम्हारे आज्ञानुसार वह चीज लेकर तुम्हारे पास अवश्य आऊँगी।

हर०—(नोट लेकर) तब तो तुमने बड़ा काम किया। अच्छा तो लो यह पुरस्कार। (एक नोट देना)

हर०—(खुश होकर) बहुत कुछ मिला धर्मावतार! पर यह तो बताइये, कि आप कमलापर क्यों मरते हैं? क्या उससे बढ़कर संसारमें और कोई सुन्दरी नहीं हैं?

हर०—मैंने तो उससे बढ़कर सुन्दरी नहीं देख पायी।

कुटनी—सच है। मेंढ़कको अपना गढ़ा ही समुद्र नजर आता है। बाबू साहब! आप इस ध्यानमें न रहिये। यदि इस दासीपर आपकी कृपा रहेगी, तो यह आपको ऐसी ऐसी युवतियाँ दिखायेगी कि कमला भूल जायेगी।

हर०—हाँ, तब तो अवश्य ही, मैं तेरा गुण गाऊँगा। तो क्या तेरे पास स्त्रियोंकी कोई खान है?

कुटनी—यह तो हम कुटनियोंके उदरपालनका सामान है।

हर०—समझा, परन्तु मुझे यह देखकर आश्चर्य होता है, कि तुमलोग किस तरहसे गृहस्थ घरकी कुलललनाओंको अपने जाल-में फँसा लाती हो? जहाँ एक चिड़िया भी नहीं पहुंच सकती, वहाँ तुमलोग बातकी बातमें बिना रोकटोकके कैसे चली जाती हो?

कुटनी—यह जानकर क्या करियेगा? यह रहस्य बड़ा गहरा है।

हर०—भला कुछ तो बताओ? ऐसी कौनसी युक्ति है, जिसमें इतनी शक्ति है?

कुटनी—कहाँतक बताऊँ? इसके अनेक उपाय हैं, परन्तु आपका भ्रम दूर करनेके लिये दो चार बातें बताती हूँ। सुनिये, हम लोग अनेक प्रकारकी चीज़ें लेकर गृहस्थोंके घर जाती हैं और इसी तरह सुन्दर सुन्दर युवतियोंके पास सस्ता माल बेचकर अपनी मित्रता बढ़ाती हैं। समय पाकर कभी उन्हें देव-पूजनके बहाने और कभी गङ्गास्नानके बहाने ले जाती हैं और अपने लगे-बँधे सेठ साहूकारोंको दिखलाती हैं। जिसने किसी युवकपर आँख रक्खी, उस युवतीके हृदयमें काम-शक्ति जगाती हैं और समय पाकर उन्हें परपुरुषोंसे मिलाकर दो पैसा कमाती हैं। विशेष क्या कहूं? इसके और भी अनेक साधन हैं। गृहस्थ घरके नौकर चाकर तथा दाइयोंको अपने साथ मिलाना, दस

तीस रुपये महीना उन्हें भी चटाना आदि अनेक ढङ्ग हैं।

हर०—(स्वतः) परमात्मा इनसे घर गृहस्थोंकी ललनाओंको बचाये। (प्रगट) वाहवाह ! तुम लोग तो बड़ी धूत हो ! अच्छा, अब मैं जाता हूं।

कुटनी—परन्तु दासीको भूल न जाना।

हर०—कभी नहीं, यदि तुम मुझे सुख पहुंचानेका उद्योग करोगी ! तो अवश्य मुझसे सहायता पाओगी।

(हरकिशोरका जाना)

कुटनी—(हँसती हुई) परमात्मा तुमको सुखी रक्खे। जाओ जाओ, आज कमलासे मन भरके मिल लो। परन्तु फिर यही कमला तुम्हारे लिये विष हो जायगी। सारी सुन्दरता भूल जायगी। यह धूर्त कुटनी कल ही तुम्हारा मन फिरायेगी।

(जाती है)

दृश्य सातवां।

(फर्शपर गलीचा बिछा है, तकिये लगे हैं, पानदान, इत्रदान वगैरह रक्खा है, एक तरफ सफरदे और एक तरफ मारवाड़ी, भाटिया, पजाबी, मुसलमान, ब्राह्मण बंगाली, इत्यादि अपने अपने वेशमें बैठे हुए हैं, बीचमें रजियाकी लड़की "कुन्दन" बैठी गा रही है)

(गायन)

काहेको बिरह कटारी मारी नयनोंकी, हां...॥

मैं तो हूं भोली भाली सार न जानूं।

काहे कियो मतवारी, हाय मारी नयनों की, हां ॥काहेको॥
छाड़ गये किन नेह लगाके।
भूल गये सुधि सारी, हाय मारी नयनों की, हाँ ॥काहेको॥
हाय दई, किमि धीर धरूँ मैं, तड़फत रैन गुजारी, हाय मारी नयनों की।
हाँ ''लागी करेजवामें कारी, कटारी नयनोंकी—हाँ'''
॥काहेको॥

(सब मग्न होकर वाह वाह करते हुए कुन्दनपर मुग्ध होते हैं।)

मारवाड़ी—(अपने स्थानसे उछलकर कुन्दनके पास जाते हुए) प्यारी कुन्दण ! तुम सचमुच कुन्दण हो। कुन्दण (स्वत) राँड़ या बखत पद्मिणी सी लागे है।

भाटिया—(मारवाड़ीसे) सेठ ! तमें सच्च कहो छो, इसका सिंगार और रूप मनको खेंची लेता है।

पंजाबी—(छातीपर हाथ मारकर) हाय ! मैं सतके तुमारियाँ जुल्फोंके जान्नी जरा हमारी वल् वी देखना।

मुसलमान—(ठण्डी साँस लेकर स्वतः) या खुदा ! क्या तुमने सारे ज़मानेका नूर इसी फुलझड़ीपर बरसा दिया? (कुन्दनसे) छोटी बीबी ! जरा इस नाचीज़की तरफ भी मुतवज्जह फ़रमाना।

ब्राह्मण—(स्वतः) नारी हो तो ऐसी हो। वाह ! वाह !! कैसा सुन्दर स्वरूप है।

बंगाली—आप लोग सोत्ति कहता हाय ! एइ शुन्दोरी हामको रोशोगुल्लार माफिक नोरोम लागता हाय।

कुन्दन—(मुस्कराती हुई) बस करिये, बस करिये। अब तारी

फोंका पुल न बाँधिये। कुछ कलके लिये भी रहने दीजिये।

मार०—(सबसे) सुणों भाइयो थें। सब बुगलाकी नाईं बेठ जावो। (कुन्दनसे) ओर खरबूजो जान! थें एक चोकखी सी कजड़ी सुणावो।

कुन्दन—हाँ हाँ सुनिये, सुनिये, मैं कजली ही गाती हूं।

(गायन)

अबके लोग बड़े शौकीन, रूप लख घर घर जाते हैं।
धर्म शर्म धन तेज बुद्धि बल, वृथा गँवाते हैं ॥अबके॥
घरमें पैसा देय नहीं, बाहर लुटवाते हैं॥ अबके॥
रूपा खोय न रूप मिले, फिर मुँहकी खाते हैं॥ अबके॥
मज़ा लेन गये कज़ा मिली, बस यह भरपाते हैं॥ अबके॥

(सब वाह वाह करते हुए प्रसन्न हो जाते हैं)

मार०—वाह! वाह!! म्हारी पकोड़ी जान! वाह! वाह!!

ब्राह्मण—(स्वतः) देखिये इस गायनमें शिक्षा कैसी कूटकूट कर भरी है? परन्तु हमलोग इस वेश्याके मनोहर रूपको देखकर अपने आपको भूल रहे हैं। यह स्वयं वेश्या होकर भी शिक्षाप्रद गायन गाती है और यह दिखलाती है; कि देखो हमारी जालमें फँसे हुए अविचारी इस झूठे प्यारको देख देखकर फूल रहे हैं।

कुन्दनका सबको सलाम करना)

कुन्दन—(सहसा नेपथ्यकी ओर देखकर सबसे) वह देखिये; मेरी अम्मा जान भी आ रही हैं।

मार०—(नेपथ्यकी ओर देखकर ताली बजाता हुआ) अम्माजान आवती है! अम्माजान आवती है!!

(उठकर खड़ा हो जाता है)

(रजियाका आना और सबको सलाम करके बीचमें बैठ जाना)

मार०—आओ म्हारी दालरी सीरो जान! कहो, चोक्खी तराँ तो हो?

रजिया—सब आपकी मेहरवानी है। कहिये सेठजी! आप तो बहुत दिनोंपर तशरीफ लाये?

मार०—हां, आजकल म्हारेको कामकी झंझट बौत रवे है, बाजारकी तेजी मन्दीमें आवणो जाँवणों को होवे नी।

रजिया—(सर हिलाती हुई) जी हां, मैं जानती हूं। आजकल आप लोग फाटके बाज़ीके पीछे हाथ धोकर पड़ गये हैं।

मार०—बाई शाब! सट्टेबाजी नेईं करां तो थारे लोगोंके घर आवणोंका खरच कठे सूँ आवे?

"थे के जानो सट्टे बाजो! सब सो चोक्खा थो बैपार।
सौ दोसौ को मिनट मिनट माँ—होय फायदो बीच बजार॥
तीन दिनाँ को नफो खायकर—म्हें सब लेवां मोटरकार।
खरचा बरचा काट बरसमें-मिल जाते हैं बीस हजार॥

मुसल०—(खूब जोरसे) अल्लाहो अकबर!

(सब साहब चमककर उस मुसलमानकी तरफ देखने लग जाते हैं)

मार० —(मुसलमानसे) भाई शाब! थान्हें के भयो?

मुसल०—आपकी बातें सुनकर गश आने लगा था।

मार०—(आश्चर्यसे) हैं, गश आवणे लग गयो! और म्हारी बात सु'णकर?

मुसल०—जी हां, आपकी लम्बी चौड़ी वात सुनकर, अरे मैं पूछता हूं तुम आदमी हो कि पैजामा?

मार०—(बिगड़कर उछलता हुआ) के कयो ; रांड़काके कयो ! म्हें ओर पैजामा ? रांड़का ! थें म्हारी इज़्ज़त लेवे हे ?

मुसल०—(मुँह बनाकर) अजी बैठो, बड़ी इज़्ज़तवाले आये। तुम सट्टेवाजोंकी क्या इज्जत है ! जो घाटा देनेके लिये मुँह छिपाते हैं और नफा लेनेके लिये लम्बे पड़ जाते हैं।

मार०—(डपटकर) बस, खबरदार, इवके थें बोलोगा तो मारपीट हो जासी !

मुसल०—तो क्या मैं इससे डरता हूं ?

रजिया—हैं हैं ! आप आपसमें फजूल क्यों लड़ते हैं ? बात क्या है ?

(सबके सब "जाने दो सेठजी" कहकर मारवाड़ीको शान्त करते हैं)

मार०—देखो, म्हारेको पैजाम्मा कवे है (मुसलमानको घूरता है)

रजिया—चलो जाने भी दो, इन्होंने दिल्लगी की और आप खामखाह गर्म हो गये।

(मुसलमान मारवाड़ीकी ओर देखकर हँसता है, मारवाड़ी चिढ़ता है)

बंगाली—अरे मोशा ! थाक् थाक्। जा होलो, होलो, एखुन रोजिया बीबीर गान होवा चाई।

भाटिया—ठीक छे, ठीक छे, गायन द्यो, गायन।

रजिया—हाँ हाँ, सुनिये सुनिये।

(सफरदोंको बजानेका इशारा करती है)

मार०—तोके गॉवणो होस्सी ? बस बस, म्हारा माथा इब ठण्डा हो जास्सी, हां हां गावो गावो।

रजिया—लीजिये, लीजिये अभी गाती हूं :—

न जा गैर के घर जमाना बुरा है ।
किसीसे भी दिलका लगाना बुरा है ॥ न जा ॥
हसीनोंकी तिरछी निगाहोंसे डरना ।
कि इन बर्छियोंका निशाना बुरा है ॥ न जा ॥
दिलका लगाना है, आहों का खाना ।
आखिरमें इसका ठिकाना बुरा है ॥ न जा ॥
कोई नहीं मर्ज इसकी दवाई ।
मरना भला मन लगाना बुरा है ।

(सब वाह वाह करते हैं, रजिया सबको सलाम करती है)

मार०—वाह वाह ! वाह वाह !! वाह वाह !!! (स्वतः) रांड किसोक् गावे हैं ? (दर्शकोंसे)

छोड़ो भाई अब तो धन्धो, पैसो घणो कमायो ।
बेल रीं नाईं जुत्यो रह्यो, तो क्या फिर जगमें आयो ॥
देक्खो याको चटको मटको, किसोक् गाणों गायो ।
बाप न दादो मजो लियो, आप्पाँ मोज उड़ायो ॥

(जोशमें आकर जेबसे, एक नोटका बण्डल निकालकर रजियाके सामने फेंकता हुआ)

अच्छा तो ल्यो म्हारी सबज परी, ल्यो । (स्वतः) आजरी गुदड़ी रे सट्टे री कमाई थारेई भाग री है ।

(मूँछोंपर ताव देता हुआ सबको घूरता है)

मार०—ओर नईं तो के :—

बीस गांठरे सट्टे का, तो नफा हो गया बाईका ।

कौण देईसी म्हारे जैसा, पैसा घणी कमाईका ॥
शोख हो गया राँड़ राखनेका, तो भाई भाईका ।
इसी बातसे भाव बढ़ गया, सुन्दर राँड़ लुगाईका ॥

भाटिया—(मारवाड़ीको घूरता हुआ स्वतः) त्यारे अपणे समझी लेवूं के आजे बाजार थी दलाली मिली न थी (प्रगट एक नोट रजियाको देता हुआ) ल्यो एक हजार ना नोट ।

(रजिया सबसे रुपये लेती हुई सलाम करती है और रुपये सारङ्गीवालेको देती जाती है)

पञ्जाबी—(भाटियाको घूरता हुआ एक नोट रजियाको देता है) लो तुमारेको हम भी देता हाँ (स्वतः) होर की, समज लवाँगे इक रकम ग्यालखाते पादित्ती ।

मुसल०-(पंजाबीको घूरता हुआ जेबसे दो नोट निकालकर देता है लो बीबी जान ! लो, (स्वतः) चलो,अबकी बार ईद न मनायेंगे ।

ब्राह्मण—(मुसलमानको घूरता हुआ गलेसे सोनेकी सिकली उतार कर देता है) लो सुन्दरी लो, (स्वतः) समझ लेंगे, एक यजमान का विवाह नहीं कराया ।

बंगाली—(ब्राह्मणको घूरता हुआ अपनी अंगुठी उतारकर देता है) लेन् आमार शोन्देश प्रान ! एइ पाँच हाजार टाकार हीरेर आंटी । (स्वतः) मने कोरबो, एकटी वाड़ीर भाड़ा पाओवा गेलो ना ।

मार०—(स्वतः) पर म्हारी ही मोछ ऊंची रही (प्रगट) तो फिर म्हारी जान इब गाँवणो बजाँवणो शुरू करो ।

रजिया (नेपथ्यकी ओर देखकर) माफ करिये, अब तो मैं

काली०—(स्वतः) इसका प्यार तो मुझपर सच्चा है। (प्रगट) प्यारी! मुझपर प्यार क्यों बढ़ाती हो?

दुर्गा०—(कालीदाससे) धन, धर्म और बल हरनेको।

मनो०—(स्वतः) अरे यह कहांसे आया कान भरनेको?

दुर्गा०—(कालीदाससे)

"प्यार है संसारसे, तुमको उठाने के लिये।
जाल यह रंडीका है, पंच्छी फसानेके लिये॥

रजिया—(कुढ़ती हुई अपने आपको सम्हालकर) क्या करूँ प्यारे! मन नहीं मानता।

अक्स दिलपर पड़ गया, इस खुशनुमां तसबीरका।
जख्म करता है बिछुड़ना, आपका शमशीरका॥

काली०—बस! बस!! अब आगे न कहो। ये दिलको टुकड़े टुकड़े करनेवाले शब्द मैं नहीं सहन कर सकता।

रजिया—खैर जाने दीजिये (दुर्गादासकी ओर संकेतकर) और जरा आपकी तो तारीफ कीजिये।

काली०—यह हमारे वही मित्र हैं जिन्होंने जंगलमें डाकुओंसे मेरी रक्षा की थी।

रजिया—हाँ, क्या आप ही हैं जिनकी तारीफ आप हमेशा ही किया करते थे?

काली०—हां, ये वेही मेरे परम हितैषी बन्धु हैं।

रज़िया—मगर माफ कीजिये, इनको यहाँ आना बहुत बुरा मालूम हो रहा है।

काली०—नहीं नहीं यह शर्माये हुए हैं।

दुर्गा०—कालीदास! इसने सत्य ही कहा है। वास्तवमें यह स्थान मेरे लिये नरकके समान है।

काली०—मित्र! तुम क्या कह रहे हो? यह आनन्द तो स्वर्गकासा है।

दुर्गा०—मूर्खोंका बनाया हुआ।

मनो०—तो फिर नरक कैसे हुआ?

दुर्गा०—गुणियोंका बताया हुआ, वेदों और शास्त्रोंमें गाया हुआ।

काली०—अजी जाने दो, इस झगड़ेमें क्या रक्खा है। मित्र दुर्गादास! तुमने अभी इस आनन्दका स्वाद नहीं चखा है। अच्छा तो प्यारी रजिया! मेरे मित्रको एक ऐसा गाना सुनाओ, कि इनका ज्ञान ध्यान भागनेके लिये रास्ता ढूंढ़ने लग जाये।

दुर्गा०—(स्वतः) और मेरे हृदयसे निकलकर तुम्हारे हृदयमें घर बनाये।

रजिया—हाँ हाँ, सुनिये :—

क्यों न सच्ची प्रीति पियाके मनको खींच लायगी।
दो दिलोंमें तार एक बेतारकी लग जायगी॥ क्यों न॥

(शेर)

जहाँ पे बस गया दिलमें, कोई प्यारा दिलका।
नहीं चलता है बशरसे, वहाँ चारा दिलका॥
लगीको तोड़ सकता न, किनारा दिलका।
लगी दिलकी को परख सकता है, मारा दिलका॥
एकसे मिल एककी हालत बदल जायगी॥ क्यों न॥

मनो०—वाह वाह! वाह वाह!! वाह वाह!!!

काली०—वाह वाह! प्यारी! वाह वाह!

दुर्गा०—प्यारी नहीं, कटारी, कहो कटारी।

काली०—हैं! कटारी!

दुर्गा०—हाँ; कटारी, कटारी। जिसका यह एक छिपा हुआ वार है। इस विषैली कटारीका लगा हुआ घाव तुमको उस समय नजर आयगा, जब तुम्हारा रहा सहा धर्म और धन नाश हो जायगा।

(सब उपस्थितगण अपने मनमें दुर्गादासके प्रति घृणा प्रगट करते हैं)

काली०—मित्र! तुमने यह क्या कह डाला! मेरी समझमें तो कुछ नहीं आया।

दुर्गा०—समझमें क्या आवे? समझनेवाली शक्ति तो इस वेश्याके अधीन हो रही है, जो तुम्हारी समझ और शक्तिको खा रही है।

मनो०—कालीदास! तुम इनकी बातोंपर ध्यान न दो:—

प्यारकी सार क्या जाने, किया, जो प्यार न हो।
यारकी सार न जाने किया जो यार न हो॥

दुर्गा०—

हे प्रभु! शत्रु भी इस प्यारका बीमार न हो।
दर्दे सर मोल ले, चिन्तामें गिरफ्तार न हो॥
ये वो मोती है, लड़ी जिसकी तबीयत इसपर।
धर्म धन खोके भी, होते हैं न कारे तिसपर॥
ये अजब प्यास है, इस प्याससे प्यासा जो हुआ।

दाहमें खुश्क गला होते ही बेमौत मुवा ॥
ये वो लोहा है के खूं, सैकड़ोंके चाटे हैं।
ये वो खञ्जर है, गले लाखों ही के काटे हैं ॥
अन्त इस प्यारमें, सबका यह तमाशा देखा।
बदले आनन्द के श्मशान का बासा देखा ॥

रजिया (गुस्सेमें उठकर कालीदाससे) बस, मैं ऐसी बेइज्जती गवारा नहीं कर सकती। पहले आप लोग अपनी अपनी कह सुन लें, मैं यहांसे चली जाती हूँ। (जाती है)

(रजिया और कुन्दनके जानेपर कालीदास कुढ़ता है)

मनो०—(जाते जाते) तो अब मैं भी जाता हूं, फिर मिलूंगा।

(सफरदे भी कुढ़ते हुए चले जाते हैं) (जाता है)

काली०—(क्रोध दबाकर) दुर्गादास ! मित्रके रङ्गमें भङ्ग डालना ही क्या मित्रता है ?

दुर्गा०—प्यारे मित्र ! मैं मित्रताके कारण ही तुम्हें इस कुकर्मसे बचानेके लिये इस अपवित्र स्थानपर आकर, तुम्हें उत्तम सुमार्गपर ले जाता हूं, खरी खरी सुनाता हूँ।

काली०—परन्तु मुझे इस कुसमयमें तुम्हारी यह नीति दुधारी छूरी मालूम होती है।

दुर्गा०—होनी ही चाहिये, क्योंकि मरनेवाले रोगीको दवा बुरी मालूम होती है।

काली०—

क्यों न सूँघें हम, है जब, यह फूल एक संसारका।
क्यों न लें आनन्द आकर, जगतमें कुछ प्यारका ॥

दुर्गा०—

फल बुरा है अन्तमें, वेश्याके झूठे प्यारका।
घाव अच्छा ही नहीं, होता है इस तलवारका॥
सर्प विष सा जहर चढ़ता, तनमें इसकी धारका।
जो भला चाहो तो कर लो, प्यार उस करतारका॥

काली०—

प्यार जो उसका करूं, मर कर मिलेगा फल मुझे।
इस जगह जिस पल दे वैसा फल मिले उस पल मुझे॥

दुर्गा०—

देख ले पछतायगा इक, पल न होगी कल तुम्हें।
नाश कर देगी, सुखोंकी आग बलबलके तुम्हें॥

काली०—आह!—

डरते हो क्यों इस रंगसे? उलटा तुम्हारा ख्याल है।
क्यों नहिं रहे इस रंगमें—पल्लेमें जबतक माल है॥

दुर्गा०—

पैसा हैं जबतक गाँठमें, उतने ही दिन यह हाल है।
दिल जो रंगे इस रंगमें, वह अन्तमें कंगाल है॥
उस रंगमें रंगो ये मन, जो कुछ बड़ोंकी चाल है।
छोड़ दो भाई मेरे ये, मजा नहीं है काल है॥
फिर भी कहता हूं बचो, यह रंडियोंका जाल है।
वृक्ष यह फलता नहीं, सूखी ही रहती डाल है॥

काली०—

वृक्ष यह सूखा नहीं, डाली सदा फलदार है।

वृक्षका फल देख लो, कुन्दनको कैसी नार है ॥

दुर्गा० —

ऐ मित्र! सोचो तो भला, इस कर्म्मका क्या सार है?
घरमें बिना सन्तानके, रोती बिलखती नार है॥
व्यभिचारियोंके रंगसे उत्पन्न यह जो नार है।
हर जातिके पुरुषोंसे फिर, करती वही व्यभिचार है॥
हा! धर्म्म कैसा हिन्दुओंका, हो रहा अब छार है।
उत्तम कुल निर्वंश, अब तो कह रहा व्यभिचार है॥
फिर भी कहूंगा अन्तमें, छोड़ो ये नीच विचार है।
कर प्यार हरिका मित्र तूँ, जिस नामसे उद्धार है॥

काली०—जबतक पहले हम संसारको न छोड़ दें—यह काम क्या हो सकता है?

कहाँसे निकलेगी मैल मनकी, हो दूर कैसे भला अशुद्धी।
कहो तो होगा वो ध्यान कैसे न होगी जबतक मनकी शुद्धी॥

दुर्गा०—

कहाँसे होगा वो बोध तुमको, भरी हैं मनमें जहाँ कुबुद्धी।
किसी कवीने सचही कहा है "बिनाशकाले बिपरीत बुद्धी"॥

काली०—(क्रोधमें) बस, अब विशेष बातें न बनाओ, मेरे सामनेसे दूर हो जाओ। आजसे तुम मेरे मित्र नहीं, शत्रु हो।

दुर्गा०—बहुत अच्छा, मैं इस समय जाता हूं, पर याद रखना:

मित्र तुमको कह चुका, शत्रु बनाऊँगा नहीं।
लाख दुतकारो मुझे, मनमें लगाऊँगा नहीं॥

जब तलक सुधरो न तुम, मैं चैन पाऊँगा नहीं।
ये न होगा समयपर, मैं काम आऊँगा नहीं॥ (जाता है)

काली०—चलो हत्या टली। (सोचकर) हाँ, अब चलूं, प्यारी रजिया को मनाऊं और दुर्गादासकी मित्रता छोड़ देनेका समाचार सुनाऊँ।

(जाता है।)

दृश्य आठवाँ।

(स्थान—मिस्टर डफालचन्द् वकीलका घर)

(कल्लू नौकर आकर दो कुर्सियाँ और एक छोटासा टेबूल रख जाता है, जिसपर कलम दावात और कागज रक्खा है।)

(मनोरंजनका घबराते हुए आना)

मनो०—(इधर उधर देखता हुआ) हे हिन्दुओंके परमात्मा! यह पुलिसके बागड़बिल्ले तो मेरा पीछा ही नहीं छोड़ते। ज्यों ही आज घरसे बाहर निकला, कि वारण्ट, सम्मन, डिगरी, एक न एक भूत मेरे पीछे अभिनन्दन-पत्र लिये घूम रहे हैं! (दर्शकोंसे) मित्रो! मैं आप लोगोंसे यह पूछता हूं, कि कालीदासके मित्र दुर्गादासका मैंने क्या बिगाड़ा है, जो उसने मेरे लिये यह षड़यन्त्र रचा? (नेपथ्यकी ओर देखकर) अच्छा दुर्गादास! यदि मैं आदमीका बच्चा हूं तो तुझसे बदला लेकर ही चैन पाऊँगा तू हाथ न आया तो कालीदाससे बदला चुकाऊँगा। (दर्शकोंसे) क्या मैं अच्छे कपड़े न पहनूँ! मुफ्तका माल मिलनेपर भी

घोड़ागाड़ी न दनदनाऊँ ? मित्रोंमें मूँछें खड़ी और नाक ऊँची न रक्खूँ ? मैं आप लोगोंसे पूछता हूँ, कि यदि मैं एकके सरसे पगड़ी उतारकर दूसरेके सरपर रखता हूं तो अदालत-वालोंके पेटमें क्यों दर्द होता है ?

आज ज्योंही मैं घरसे बाहर निकला, कि अदालतका एक कुत्ता मुझे बिल्ली समझकर मेरे पास दौड़ आया। परन्तु मित्रो ! मैं भी इस संसारमें लोमड़ीका जन्म लेकर आया हूं। बस मैंने भी उसे इधर उधरका मुगालता दे, पीछेसे एक चपत जमा दी और जबतक वह अपनी खोपड़ी सुहरावे, तबतक दौड़कर इस घरमें घुस आया। (हँसकर) बाहरे मैं ! और वाहरी मेरी चतुराई ! अब मैं तो यहाँ खड़ा अपने आनन्दके रागमें मग्न हो रहा हूं और वे बाहर अपने बापके नामको रो रहे हैं। (सहसा कुछ सोचकर इधर उधर देखता हुआ) परन्तु यह घर किसका है ? यदि इस घरका मालिक आ गया और मेरे आनेका कारण पूछ बैठा तो क्या उत्तर दूँगा ? (सोचकर) अजी आने दो, समय आनेपर कुछ अण्ट संट्ट ठोंक दूँगा। (मूँछपर ताव देता हुआ टहलता है।)

(कल्लू नौकरका प्रवेश)

कल्लू—(आते ही मनोरंजनकी तरफ देखकर स्वतः) हैं ! यह कौन ? (सोचकर) ठीक है, वकील साहब कहते थे कि आज मेरा साला आनेवाला है। कहीं वही तो नहीं आ धमका ? (आगे बढ़कर मनोरंजनसे) अजी भाई साहब ! यदि आप कृस्तान हैं तो गुडमौर्निङ्ग ! हिन्दू हैं तो राम राम और मुसलमान हैं तो वालेकमस्सलाम।

मनो०—(स्वतः) लो, चलती गाड़ीमें रोड़ा अटका, आ गया जिसका था खटका! अब कारण क्या बताऊँ ? (सोचकर) ठीक है, (प्रकट) अहा! कौन मेरे पुराने मित्र! कहो यार, अच्छे तो हो। बाल बच्चे तो अच्छे हैं ? तुम तो आज बहुत दिनोंके बाद मिले ?

कल्लू—(स्वतः) मैं और इसका मित्र! (सोचकर) यह तो कोई पाकेटमार जान पड़ता है। (प्रकट) अजी इन सब बातोंको छोड़िये और यह बताइये कि आप यहाँ क्या करने आये हैं ?

मनो०—(डपटकर) क्यों बे झूठे! तूने मुझसे कहा था न कि मैं तुम्हें अपने पिताके विवाहमें बुलाऊँगा ?

कल्लू—"हैं! पिताके विवाहमें बुलाऊँगा !!" तुम आदमी हो कि घनचक्कर ? जल्द बताओ। मेरी मालकिनके लिये कुछ सौगात लाये हो या वकील साहबसे किसी मुकद्दमेकी सलाह पूछने आये हो ?

मनो०—(स्वतः चौंककर) वकील! अररर! क्या मैं पुलिसके डरसे वकीलके घरमें घुस पड़ा ? हाय हाय! यहाँ भी पकड़े जानेका खटका! आमसे गिरा तो बबूलमें अटका। (प्रकट) हाँ हाँ उन्हींसे मिलना है। (बाहरकी तरफ देखता है)

(नेपथ्यसे आवाज आती है "कल्लू! अबे ओ कल्लू !!")

कल्लू—लीजिये गरम एञ्जिनकी तरह भभकते हुए वकील साहब भी आ पहुंचे।

(क्रोधमें भरे डफालचन्द वकीलका आना)

मनो०—(डफालचन्दको देखकर स्वतः) लो आ गया बेदुमका

लंगूर। बस अब यहाँपर पट्टीबाजीसे काम निकालना चाहिये।

डफाल०—(क्रोधमें कल्लूसे) क्यों बे! तू जवाब क्यों नहीं देता था?

कल्लू—जवाब देनेके लिये कोई दूसरा नौकर रख लीजिये।

डफाल०—(भिड़ककर) चुप रह मूर्खका बच्चा!

कल्लू—बहुत अच्छा, यह मूर्खका बच्चा चुप रहता है। परन्तु (मनोरञ्जनको दिखाकर) यह देखिये, बुद्धिमानका बाबा आपसे मिलनेके लिये आया है। (चला जाता है)

(मनोरञ्जन और डफालचन्दकी आंखे चार होती हैं। मनोरञ्जन झुककर सलाम करता है)

मनो०—(स्वतः) बस अब मेलट्रेन और पैसेञ्जरकी टक्करका समय आया।

डफाल०—(स्वतः) बहुत दिनोंपर एक शिकार हाथ आया। (प्रकट) अखः अ, आइये आइये महाशय! कहिये क्या बात है?

(मनोरञ्जन चुपचाप खड़ा हुआ डफालचन्दकी तरफ देखता है।)

डफाल०—(आश्चर्यसे) हैं! आप तो कुछ जवाब ही नहीं देते?

मनो०—आप जैसे वकीलका मैं क्या जवाब दूँ?

डफाल०—अजी महाशय! ख़ामखाह सर क्यों खपाते हैं! अपने आनेका कारण क्यों नहीं बताते हैं?

मनो०—(स्वतः) अब कारण क्या पत्थर बताऊं? क्या करूं चला जाऊं? (नेपथ्यकी ओर देखकर) अरररर! वह सब तो सभी मेरा स्वागत करनेके लिये खड़े हैं, खम्भेकी तरह अड़े हैं।

डफाल०—(डपटकर) अजी जल्दी बताओ मुझे कचहरी जाना है।

मनो०—कचहरी जाना है तो जाइये। मुझे कोई जल्दी नहीं है। आपके घरको मैं अपना ही घर समझता हूं। यह लीजिये, मैं बैठ गया। (कुर्सीपर टेढ़ा होकर बैठ जाता है)

डफाल०—हैं, यह तो यहीं बैठ गया!

मनो०—महाशय! थोड़ी कृपा और करिये कि अपने नौकर-को एक कप् चाय और आठ आनेका रसगुल्ला लानेकी आज्ञा भी देते जाइये, मैं आपके आनेतक जलपान ही कर छोड़ूंगा।

डफाल०—(चिढ़कर) बस मैं आपको नोटिस देता हूं कि अगर किसी मुकद्दमेका मस्विदा लिखवाने आये हैं तो लिखवाइये, नहीं तो चलते फिरते नजर आइये।

मनो०—अच्छा, तो आप उछलकर कुर्सीपर बैठ जाइये।

डफाल०—(टेबिलके पास बैठकर) हाँ, लिखवाइये।

मनो०—(स्वतः) अब लिखवाऊं क्या अपना सर? (प्रकट) तो वकील साहब! क़लम तो कोई अच्छी सी मंगवाइये? (कलम उठाकर देखता हुआ) यह कलम है कि हज्जामका उस्तरा? आप लिखते हैं कि अक्षरोंका सर मूड़ते हैं?

डफाल०—हैं, फिर वही बेसिर पैरकी बातें?

मनो०—(बाहरकी तरफ देखकर, स्वतः) अभी सिपाही गये कि नहीं?

(फिर कुर्सीपर बैठकर ऊपर छतकी ओर देखने लगता है)

डफाल०—अजी, यह आप क्या देख रहे हैं?

मनो०—देख रहा हूं कि बरसात निकट है, आपने अभीतक अपने मकानकी मरम्मत नहीं करायी, कहीं जो यह गिर पड़ा और आपका कोई पड़ोसी दबकर मर गया, तो चट पुलिस आकर आपका गला दबायेगी, उस समय सारी वकालत भूल जायगी।

डफाल०—(चिढ़कर) तो आपको इसकी क्या चिन्ता है?

मनो०—चिन्ता क्यों नहीं? आखिर मैं भी तो इस मकानमें बैठा हूं।

डफाल०—अजी मिस्टर......

मनो०—जी हाँ, मेरा नाम मिस्टर कैलाशचन्द्र।

डफाल०—हां, तो मिस्टर कैलाशचन्द्र, अब जो लिखवाना हो जल्द बल्कि फौरनसे पेश्तर लिखवाइये।

मनो०—अच्छा तो लिखते जाइये—अपने बाप माँके घर हम सब मिलकर सत्रह भाई बहन हैं।

डफाल०—(कुछ लिखकर) ठहरिये। आपके सत्रह भाई बहन हैं या आपके बापके सत्रह भाई बहिन हैं?

मनो०—देखिये; यदि आप बीचमें बोलेंगे तो मैं एक शब्द भी आगे न लिखा सकूंगा। लिखिये, हमारे सत्रह भाई बहन हैं।

डफाल०—(लिखकर) अच्छा, आगे बढ़िये।

मनो०—जिनमें सोलह लड़के और दो लड़कियाँ।

डफाल०—यह तो अट्ठारह हुए।

मनो०—बराबर, हाँ अट्ठारह हुए।

डफाल०—(झुँझलाकर) आप तो पहले सत्रह लिखाते हैं और अब एक और बढ़ाते हैं।

मनो०—तो एक कम कर दीजिये, चलो सत्रह ही सही।

डफाल०—(लिखकर) अच्छा फिर ?

मनो०—लिखिये, उन सत्रहमेंसे यह सेवक (कुर्सीपर खड़े होकर) सबसे बड़ा लड़का है।

डफाल०—हैं! आप खड़े क्यों हो गये ?

मनो०—अपना बड़प्पन दिखानेके लिये। (रोने लग जाता है)

डफाल०—हैं! आप रोते क्यों हैं ?

मनो०—रोता इस वास्ते हूं, कि जब मैं पैदा हुआ तो मेरे पिताका स्वर्गवास हो गया।

डफाल०—यानी…

मनो०—मर गये। (बैठ जाता है)

डफाल०—(आश्चर्यसे) तो मिस्टर कैलाशचन्द्र! जब आप सबसे बड़े लड़के हैं!

मनो०—जी हाँ।

डफाल०—(झुँझलाकर) तो फिर बाकी सोलह कहाँसे पैदा हो गये ?

मनो०—अररर मैं भूल गया, कदाचित् मैं सबसे छोटा लड़का हूं, छोटा।

डफाल०—(लिखकर) अच्छा, आगे लिखवाइये।

मनो०—लिखिये; हम सब मिलकर अपने बापके सत्रह…

डफाल०—(बिगड़कर) अजी आगे भी कुछ लिखाते हो, या एक ही जगह तेलीके बैलकी तरह चक्कर लगाते हो ?

मनो०-तो आप बड़े मूर्ख हैं? कहते क्यों नहीं कि मैं लिख चुका।

डफाल०—(क्रोधसे) बस चले जाइये, मैं ऐसे बेवकूफ मुअक्किलका मुकद्दमा नहीं लिख सकता। (मनोरञ्जनको घूरता है)

मनो०(स्वतः) बहुत देर हुई, अब तो वे सब चले गये होंगे। (बाहरकी ओर देखकर) हैं! वह सब दुष्ट तो तारके खम्भेके समान वहीं खड़े हैं! अब क्या करूँ? क्या फिर वकील साहबको बुत्ता देकर बैठ जाऊँ? (कुर्सीपर बैठकर) अजी वकील साहब! मैं अपने पिताके शोकमें ऐसा पागल हो गया था कि मुकद्दमा लिखवाना ही भूल गया। अच्छा, अब लिखिये।

डफाल०—(कलम उठाकर) अच्छा, जल्दी लिखवाइये।

मनो०—लिखते जाइये। हम सब मिलकर अपने बापके...

डफाल०—(जोरसे कलमको पटककर झुंझलाता हुआ) धत्तेरी और तेरे बापकी ऐसी तैसी। चल भाग यहांसे। (घूरता है)

मनो०—अजी आप पतलूनके बाहर न होइये। मैं आप ही चला जाता हूं। (आगे बढ़कर फिर रुककर कुछ सोचते हुए) अजी वकील साहब! इधर आइये। जरा अपनी फीस तो बताइये।

डफाल०—(मनही मन खुश होकर स्वतः) तब तो कुछ जरूर देगा। (प्रकट) फीस फीस! एक घण्टेकी केवल दस रुपये।

मनो०—दस रुपये? तो मैंने आपके साथ तीन घण्टे झखमारी की है, लाइये तीस रुपये।

डफाल०—हैं! यह उल्टी फीस कैसी?

मनो०—निकाल रुपये, तेरे वकीलकी ऐसी तैसी।

(दोनोंका आपसमें मारपीट करते हुए चले जाना)

—॰—

दृश्य नवां।

(स्थान घरकी एक बारहदरी)

(दोनों तरफ दो पलंग बिछे हुए हैं, बीचके भागमें एक
ऊची और छोटी चौकीपर एक लोहेकी तिजौरी
रक्खी है, एक तरफ एक लैम्प जल रहा है,
पास ही एक कोच और दो
कुर्सियाँ पड़ी हैं।)

(हीरालाल और मदनका आपसमें एक दूसरेका हाथ पकड़े हुए
आना और दोनोंका एक कोचपर बैठ जाना)

मदन—प्रिय हीरालाल! न जाने क्यों आजकल तुम मुझसे असन्तुष्टसे रहते हो?

हीरालाल—भाई मदन! इसका एक गुप्त कारण है, जिसको कहते हुए मुझे लज्जा आती है। साथ ही यदि इस विषयको गुप्त रखता हूं या मौन रहता हूं तो भविष्यमें बड़ा ही भयङ्कर दुष्परिणाम दिखायी देता है।

मदन—(आश्चर्यसे) हैं! ऐसी क्या बात है जिसका भयानक दुष्परिणाम दिखायी देता है?

हीरा०—यही कि तुम्हारे पिताने स्त्रियोंके भ्रष्ट विचारोंमें आकर तेरह वर्षकी अवस्थामें ही तुम्हारा विवाह सोलह वर्षकी कन्यासे, केवल धनके लालचमें पड़कर, कर दिया हैं। (स्वतः) हाय! हमारा समाज कैसी गहरी नींदमें सो रहा है, कि जिसके ध्यान न देनेसे आज हिन्दू जातिका अधःपतन हो रहा है।(प्रकट) प्यारे मित्र! मैंने सुना है, कि तुम्हारी कमला इस समय मदो-

न्मत्त हो रही है, पर तुम अभी बाल्यावस्थाकी आखिरी सीढ़ी-तक भी नहीं पहुंचे। इसका परिणाम यह होनेवाला है कि वह युवती स्त्री तुम्हारे और अपने दोनोंके ही कुलोंमें कलङ्कका टीका लगायेगी, क्योंकि युवावस्थामें स्त्रियोंकी मनोकामना पूर्ण न होनेसे कितनोंहीको परपुरुषपर अवश्य ही पाप-दृष्टि डालनी पड़ती है। यही स्त्रियोंको व्यभिचारमें डालनेवाला एकमात्र कारण है।

मदन—परन्तु तुम यह सब क्या कह गये? मैंने तो कुछ भी नहीं समझा।

हीरा—समझोगे कहाँसे? अभी समझनेवाली अवस्था नहीं आयी है। अबतक तुमने अपनी आयु खेल-कूदमें ही बितायी है। परन्तु मदन! आज मैं मित्र-धर्मके अनुसार तुम्हें खुले शब्दोंमें केवल इतना ही कह देता हूं कि तुम अपनी स्त्री कमलाको अपने घरमें बुलाकर रक्खो, और पतिपत्नीके प्रेमानुसार व्यवहार करो, नहीं तो वह तुम्हारे सुख-रूपी फूसके ढेरोंके लिये एक चिनगारी हो जायगी, और वह प्रज्वलित अग्नि तुम्हारे सुखोंको जलाकर राख बनायगी। सोचो और अच्छी तरह सोचो कि मैं क्या कह रहा हूं।

मदन—परन्तु, उसको किस बातकी कमी है जो ऐसा कर दिखायगी? कपड़ा, गहना; रुपया, पैसा, नौकर चाकर इत्यादि दोनों तरफ यथेष्ट हैं। फिर क्या कारण है, कि वह व्यभिचारिणी हो जायगी? और फिर, माता-पिताके होते हुए भला मैं कर ही क्या सकता हूं?

हीरा०—सत्य कहते हो, प्यारे मदन! सत्य कहते हो। तुम्हारे माता-पिता ही तुम्हारे सर्वनाशके कारण हैं।

मदन०—तो तुम यह बातें पिताजीको ही समझाओ और पहले मुझे यह बताओ, कि क्या कारण है जो तुम अब आठ आठ दिन हो जानेपर भी मिलने नहीं आते हो? आते भी हो तो ऐसे कठोरहृदयी क्यों बने जाते हो?

हीरा०—प्यारे मित्र! मुझे वृथा ही लज्जित न करो। मैं तो हरघड़ी तुम्हारा दास हूं। आज कई दिनोंसे मैं एक आवश्यक कार्यमें लगा था। इसी कारणसे नहीं आ सका।

मदन०—नहीं नहीं; हीरालाल! यह सब तुम्हारा ऊपरी प्यार है!

हीरा०—नहीं मदन! नहीं, मुझे बातों ही बातोंमें ऐसा पतित न बनाओ, ऐसी अनहोनी बातोंको मनसे दूर हटाओ।

मदन—अच्छा तो फिर, आज अपने घर न जाओ, इतने दिन न आनेके दण्डमें आजकी रात्रि मेरे घरमें ही बिताओ।

हीरा०—(मुस्कराकर) तो इसमें क्या डर है? यह भी तो मेरा ही घर है। चलो, यहीं सो रहें। अब निद्रा-देवीका भी आगमन हो रहा है।

मदन—तो आओ, मैंने पहले ही सब प्रबन्ध कर रक्खा है।

(दोनों पलंगके पास जाते हैं। मदन लैम्प बुझा देता है। दोनों एक एक पलंगपर सो जाते हैं। इतनेमें बारहका घण्टा बजाता है। कमला धीरे धीरे चारों तरफ देखती हुई आती है)

कमला०--(आते ही दोनों सोनेवालोंको देखकर चौंकती हुई स्वतः) हैं! यह क्या? आज यह दोनों मित्र सुखकी नींदमें सो रहे हैं? (सर हिलाती हुई) क्यों नहीं! यह अवस्था ही ऐसी है। मित्रको घरमें सुलाना आता है, परन्तु अपनी स्त्रीको घरमें बुलाना नहीं भाता है। हा! यही कारण है, कि पतिके होते हुए भी मुझे पर-पुरुषके प्रेम-बन्धनमें पड़ना पड़ा। हा! क्या करूँ कहाँ जाऊँ? अपनी अवस्था किसे सुनाऊं? इस अज्ञान पतिसे कैसे छुटकारा पाउं! (सोचकर सहसा) हाँ जाऊं, जाऊं, प्यारे हरकिशोरके प्रेमामृतसे अपनी प्यास बुझाऊं।

(जाना चाहती है, फिर रुककर कुछ सोचती है)

कमला—हाँ, परन्तु उनका ऋण चुकानेके लिये गहना तो ले जाऊं!

(कमला चारों तरफ देखती हुई धीरे धीरे तिजोरीकी ओर दबे पाँव बढ़कर तिजोरी खोलती है। हीरालाल जाग उठता है और कमलाकी ओर देखकर फिर सो जाता है। कमला तिजोरी खोलकर रुमालमें बंधी हुई एक छोटी पेटी निकालकर चली जाती है, हीरालाल उसकी सब कार्रवाई देखता हुआ उठकर जाती हुई कमलाको देखता है।)

हीरा०—(नेपथ्यकी ओर देखता हुआ, स्वतः) वाह वाह! कैसा सुन्दर स्वरूप है! क्या लावण्य है? (मदनकी ओर देखकर) मदन! तू सचमुच भाग्यहीन है। ऐसी रूपवती युवती स्त्री और तू एक ञान! (सोचकर) परन्तु यह अर्द्ध रात्रिके समय कहाँ गयी और

क्या ले गयी ? अवश्य ही इसमें कोई गुप्त रहस्य है। (सोचकर) बड़े आश्चर्यका विषय है कि कमला एक घण्टा पहलेतक तो यहाँ नहीं थी इस समय अपने पूर्ण श्रृङ्गारसे क्यों आयी ? क्या इसके आनेका समाचार कोई नहीं जानता ? (सोचकर) जो हो, परन्तु इस समय कमलाका चुपचाप आना मुझे सन्देहमें डाल रहा है। क्या करूँ ? क्या इसका पीछा करूँ ? (सोचकर) क्या इस रूपवती स्त्रीके सन्मुख जाकर अपने मनको स्थिर रख सकूँगा ? (सोचकर) तो क्या, अपने मित्रकी स्त्रीपर सन्देह होते हुए भी उसकी परीक्षा न लूं ? (सोचकर) हाँ जाऊँ, उसके पीछे पीछे जाऊँ और देखूं कि वह कहाँ जाती है ! जब वह अर्द्धरात्रिके समय अपने आपको छिपाती हुई जाती है तो अवश्य ही किसी पुरुषको अपनाती है। बस जाऊँ और उसका सारा भेद जान आऊँ।

(प्रस्थान)

दृश्य दसवां।

(स्थान, घरका एक दालान)

(हरकिशोरका प्रवेश)

(गायन)

न किया प्रेम तो, दुनियामें जिया काहेको।
तुम्हें एक दिल है जो, ईश्वरने दिया काहेको ॥

शेर

तुमारा दिल है क्या, एक प्रेमका खजाना है ।
इसीसे तुमको सीढ़ी स्वर्गकी चढ़ाना है ॥
देवताओंने जिसे अगम कह बखाना है ।
पार संसारसे जाना ही, दिल लगाना है ॥
किया तो क़ौल या इक़रार किया काहेको ॥
न किया प्रेम तो ॥

हरकिशोर—(स्वतः) प्यारी मोहना ! तू सचमुच ही मनको मोहनेवाली है । अहा ! मैं नहीं जानता था, कि उस धूर्त कुटनीके हाथमें सुन्दरताकी खान है । बस प्रेम करे तो ऐसी रमणीसे वाह वाह ! क्या सुन्दरता है ! मानों ईश्वरने अपने हाथोंसे वह मनमोहनी प्रतिमा बनायी है । अहा ! जबसे उस मृगनयनीने अपने कटाक्षके कटीले बाणोंसे मेरा हृदय बेधन किया है । तबसे कमलाका ध्यान दूर हो गया, उसका प्रेम-रूपी शीशा, सुन्दरता-की एक ही ठोकरसे चूर हो गया । प्यारी मोहना ! तुमने क्या किया ?

क्षण एक न चैन पड़े मनको, ऐसा मन मोह लिया तुमने ।
देखे बिन कल पल एक नहीं, जबसे एक दरस दिया तुमने ॥
अब कौन उपाय करूं मनमोहन ? जब बाँध लिया है हिया तुमने ।
दिन रैन कटे तुमरी धुनमें, एक जादू जगाय दिया तुमने ॥

बस, अब मेरे हृदय-मन्दिरमें कमलाके लिये स्थान नहीं रहा । (सोचकर) परन्तु जब वह सन्मुख आयगी, तो उसे क्या उत्तर दूँगा (सोचकर) ठीक है:—

(कमलाका आकर चुपचाप हरकिशोरका हृदयोद्गार सुनना)

करूं प्रेम मैं दोनोंसे, पल एक न सुखसे खाली हो।
जिधर फिराऊँ आँख उधर ही पड़ी परोसी थाली हो ॥
उससे प्रेम निराला हो, और उससे प्रीति निराली हो।
दूर करूँ उस एक प्रियाको, जो कि हृदयकी काली हो ॥

कमला—(आगे बढ़कर) परन्तु :—

परख कसौटीपर लेना, जो त्रिया सत्यव्रतवाली हो।
मत मरना सूरतपर, चाहे गोरी हो या काली हो ॥

हर०—(स्वतः) अररर! क्या इसने सुन लिया? बस अब रंग पलटना चाहिये। (प्रगट हँसकर) प्यारी कमला! क्या आ गयी?

कमला—हाँ, मैं तो आयी पर क्या मेरे स्थानपर कोई और अधिकार जमा गयी?

हर०—(अपने आप लज्जित होकर) हैं! कमला! यह आज सहसा कौन सी अनहोनी चिन्ता मनमें समा गयी? ओहो, इतने दिन आनेका दोष क्षमा करानेका अच्छा बहाना पा गयी।

कमला—नहीं नहीं, यह कहिये कि कमलाकी सुख-रूपी नगरीमें काली घटा छा गयी।

हर०—कमला! कहीं भाँग तो नहीं खा गयी? क्या तुमने मेरा हृदयोद्गार सुनकर यह समझा है, कि मैं किसी औरसे प्रेम करता हूं? नहीं, यह तुम्हारा केवल भ्रम है।

कम०—परन्तु यह क्या कह रहे थे? प्रेम दोनोंसे करूं......

हर०—(स्वतः) हाय हाय! सब कुछ ताड़ गयी (प्रकट) (खिलखिलाकर हसते हुए) कमला! तू तो सचमुच पागल हो जायगी।

क्या बातकी मड़क भी नहीं समझती। सच है, अभी लड़कपन-की अवस्था है न!

कम०—तो क्या मेरे समझनेमें ही भूल है?

हर०—इसमें क्या सन्देह है? तुम्हारा विचार ही निर्मूल है। प्यारी! तू तो मेरी प्रेम-वाटिकाका निराला ही फूल है। तूने कैसे समझा कि मेरा विचार तेरे प्रतिकूल है? छोड़ो, इस विषय को यहीं तोड़ो। बताओ बताओ, प्यारी कमला! तुम्हारे मनमें ऐसी क्या बात समायी है जो मुझसे प्रति दिन मिलनेकी जगह आज पन्द्रहवें दिन आयी है?

कम०—प्यारे! क्या तुम नहीं जानते कि मुझे कितनी कठि-नाई है? मेरे घरमें कैसी अशान्ति छायी है। उधर रोती भौजाई है, और उधर व्यभिचारी भाई है!

हर०—अरे! वह तेरा भाई तो सौदाई है, पर मैंने तो तुझसे प्रेम करनेमें आजतक आशामें ही एक एक घड़ी बितायी है।

कम०—क्षमा करो, आज कमला तुमसे क्षमा माँगने आयी है, (कपड़ेमें बँधी एक छोटी पेटी देती हुई) यह लो, तीन हजारका गहना; जो यह दासी तुम्हारे प्रेमकी भेंट लायी है।

हर०—(कमलाके हाथसे पेटी लेकर) ओहो, आज तो मैंने प्रातःकाल अवश्य ही किसी भाग्यवानका मुख देख पाया है। परन्तु, मैं तो समझता था कि तेरी आँखें बदल गयीं।"

कम०—क्या कहा? मेरी आँखें बदल गयीं। नहीं नहीं ऐसा न कहो, यह हार्दिक प्रेम कभी न होगा।

हर०—परन्तु मुझे कैसे विश्वास हो?

कम०—मेरी परीक्षा ले लो।

(हीरालालका आकर छिपना और सुनना)

हर०—परीक्षा ! परीक्षा—केवल यही हैं कि यदि तेरा प्यार सच्चा है तो मुझे छोड़कर कहीं न जा। इस प्रेमीका हृदय न दुखा।

(दोनों धीरे धीरे कुछ बाते करते हैं)

हीरा०—(स्वतः) कहीं न जा, बस इसीके वास्ते रजिस्ट्री हो जा। (हरकिशोरको घूरता हुआ) दुष्ट कहींका ! बस, अब मैं बाहर जाता हूं और जब यह निकलकर जाय तो सन्मुख होकर इसे हाथमें लाता हूं। जब व्यभिचारिणी ही है, तो इसे मैं अपनाता हूं।

हर०—नहीं कमला ! नहीं, मैं यह नहीं मान सकता।

कम०—प्यारे हरकिशोर ! ऐसा न कहो। यदि ऐसा करती हूँ तो खुल्लम-खुल्ला व्यभिचारिणी कहाती हूं। इतना भी जो तुम्हारा प्रेमामृत लेनेके लिये यहाँपर आती हूँ सो भी अपने कुलको कलङ्क ही लगाती हूं।

हर०—(रूखे स्वरसे) तो फिर स्पष्ट ही क्यों नहीं कहती कि मैं तुम्हें नहीं चाहती।

कम०—यह शब्द तो श्मशानमें जानेपर भी मुंहसे न निकलेंगे।

हर०—कमला ! बस यदि तेरा कुछ भी प्यार है तो मेरी इच्छा पूर्ण कर।

कम०—नहीं, मुझे अपने जन्म बन्धुओंसे पृथक् न करो। पतिके रहते हुए मैं ऐसा करनेमें असमर्थ हूं।

काटकर टांगें मेरी, पावे बना लो चार तुम ।
हैं मेरी दोनों भुजायें, पाटी बनानेके लिये ॥
बाल हैं सरके मेरे लो, सेज बिनवा लो अभी ।
खाल लो यह सेजपर अपनी बिछानेके लिये ॥
लो परीक्षा सब तरह, पर रहने दो मेरा सोहाग ।
यह न दो शिक्षा मुझे, विधवा बनानेके लिये ॥

हर०—परन्तु इसके सिवा मेरे पास और उपाय नहीं ।

कम०(स्वंतः) अब क्या करूँ ?

नहीं ऐसी परीक्षाकी घड़ी पहले बिचारी है ।
लगा बैठी हूं मन इससे, बुरी मदकी बीमारी हैं ॥
इधर है प्रेमका बन्धन, उधर पति-देह प्यारी हैं ।
किसे छोड़ूं ! किसे चाहूं ? कटारी यह दोधारी है ॥
तराजूपर अगर तौलूं, जो सच्चा न्यायकारी है ।
तो पलड़े एक सां दोनों, न हलका है न भारी है ॥

हर०—क्यों कमला ! क्या स्थिर किया ?

कम०—यही कि:—

प्रेम तो कहता है चल, पर धर्म कहता है निकल ।
मन जमाती हूं जिधर, टिकता नहीं जाता फिसल ॥
जिस तरफ गिरती हूं मैं जाती हूँ उलटी मुंहके बल ।
दाहिने खाई है गहरी, बायें है गम्भीर जल ॥
धर्मके वटमें है फलता, जिस तरह अमृतका फल ।
प्रेम-पोखरमें है खिलता, स्वर्ग सुख-रूपी कमल ॥
सोच लो दोनों दलोंमें, अधिक किस हलका है

न्याय तुमही कहो, बस अब करो मुझसे न छल ॥

हर०—प्यार है तो काट सर, वाधा है तो चल जा निकल।

बस यही उत्तर अन्तिम, प्रीति कर या हाथ मल ॥

कमला—तो क्या और कोई उपाय नहीं ?

हर०—नहीं; इसके सिवा और कोई उपाय नहीं।

कम०—अच्छा तो देखो, इस नारीके सच्चे प्रेमको भी देखो। यद्यपि मैं इस हत्याकाण्डका दुष्परिणाम अच्छी तरह जानती हूँ। तथापि, अपने सच्चे प्रेमकी परीक्षा देनेके लिये इस पाप-कर्मकी आज्ञाको भी मानती हूं; परन्तु देखना :—

करते हो यदि प्यार तो फिर अन्त निभाना।

बेड़ा न मेरा, देखना, मझधार डुबाना ॥

हर०—(प्रसन्न होकर) बस बस प्यारी कमला! अब मेरा मन तेरी सचाईसे भर गया :—

आ गया अपना समय, खुशियाँ मनानेके लिये।

हर्षसे मिल प्रेमरस, पीने पिलानेके लिये ॥

दूर बाधायें सभी होंगी, समयके फेरसे।

खुल गये पट प्रेमके, मन्दिरमें जानेके लिये ॥

अच्छा प्यारी! मेरे साथ आ। मैं इस सम्बन्धमें तुझे एक ऐसी विद्या सिखाऊँगा, जिससे मोह ममता हृदयसे दूर हो जायेगी (स्वतः) फिर तुम्हें उंगलीपर नचायेंगे और प्यारी मोहनासे दिल लगायेंगे।

(दोनोंका प्रस्थान)

दृश्य ग्यारहवां ।

[स्थान—एक घरका दालान]

(बीचमें एक कोच और कुछ कुर्सियाँ रक्खी हैं, कोचके पासही एक छोटासा टेबुल रक्खा है । जीवन नौकर हाथमें एक पानकी डिबिया लेकर आता है और रखकर उसे टेबिल वगैरह साफ करता है ।)

जीवन—(स्वतः) हे परमेश्वर! मुझे इतनी शक्ति दे, कि मैं स्वामी-सेवा करनेमें पौरुषहीन होऊं । अहा! सेवासे क्यों न मेवा मिले ? परन्तु आजकल सेवा करना जानता ही कौन है! अब तो सारी सेवा रुपयोंके अधीन है । यदि मनमाना वेतन देनेमें मालिकोंको कष्ट होना है, तो उन्हें और सताते हैं । दस दिन मालिकके पास वेतन देनेके लिये रुपये न हुए तो आँखें दिखाते हैं, उसे बदनाम कराते हैं, सामने होकर गुर्राते हैं । हा! मूर्खोंको इतना भी नहीं मालूम कि सेवकका धर्म क्या है! :—

पेट भर अन्न, जो देता है हमें खानेको ।
करते हैं लोग अब हराम उसके दानेको ॥
घात विश्वासका कर देते हैं, कमानेको ।
नहीं डरते हैं मालिकका गला कटानेको ॥
यही कारण है, कि फिरते हैं तङ्ग दानेको ।
ठौर मिलता ही नहीं, पैर के ठिकानेको ॥

(सहसा चौंककर) आह! भूला भूला, स्वामीके वास्ते चाय नहीं लाया (जाते जाते नेपथ्यकी ओर देखकर रुकता है) हैं! कालीदासजी

आते हैं !! अहा ! धन्य भाग्य जो प्रति मासमे एक बार आनेकी जगह आज दो घड़ी बाद ही घर लौट आये ! (कुछ सोचकर) परन्तु व्यभिचारियोंका विश्वास नहीं। व्यभिचारमें पड़नेपर झूठ बोलना, कसमें खाना, धर्मको मिट्टीके समान समझना इत्यादि दोष सबसे पहले आकर सरपर सवार हो जाते हैं। इनका क्या विश्वास ? सम्भव है, कुछ रुपये पैसेकी धुनमे आये हों !! ज़रा छिपकर इनके मनोविचार सुनने चाहिये।

(जीवन एक तरफ छिपकर खड़ा हो जाता है, कालीदास प्रसन्न मनसे आता है और एक कुर्सीपर बैठकर मूँछोंपर ताव देता हुआ सर हिलाता है।)

कालीदास—(स्वतः) ठीक है, अब मित्र मनोरञ्जनकी बतायी हुई युक्तिको काममें लाऊं। पहले तो उस बूढ़े पिताको अपने सुधर जानेका विश्वास दिलाऊं, धन सम्पत्तिकी कुञ्जी हाथमें लाऊं और फिर आज उन्हें एक ही प्याले चायमें यमका द्वार दिखाऊं। (कुछ सोचता है)

जीवन—(स्वतः)

दासके होते न तुम, उनको मिटाने पाओगे।
धन भी उनका, एक ही दिन हाथसे ले जाओगे ॥

(जाता है)

कालीदास—(उठकर स्वतः) बस, इसके अतिरिक्त निश्चिन्त होनेका और कोई उपाय नहीं। जबतक यह मक्खीचूस जीता रहेगा, तबतक खर्चने खानेकी तकलीफ बनी ही रहेगी। बस, अब वे चल बसें तभी सुभीता रहेगा। (नेपथ्यकी ओर देखकर) हां,

वह सामनेसे पिताजी आ रहे हैं, अब उन्हें यह विश्वास दिलाना चाहिये कि मैंने सब कामोंसे अपना किनारा कर लिया। (एक तरफ हटकर आपही आप कुछ कहता है और किशोरीलाल चुपचाप आकर सुनते हैं) मैं बड़ा ही मूर्ख हूं! हा! मैंने पिताके उपदेश-पूर्ण वचनों पर एक दिन भी कान न लगाया। अपनी मूर्खतासे वृथा ही उनका हृदय दुखाया। परन्तु अब उनको कैसे विश्वास होगा, कि मैंने सब कुकर्म्म छोड़ दिये ?

किशोरी०—(स्वतः) जब यह एकान्तमें अपने हृदयके विचार इस तरह प्रकट कर रहा है तो अवश्य ही सीधे मार्गपर आ गया होगा। पर फिर भी इसकी परीक्षा लेनी चाहिये। (आगे बढ़कर) क्यों कालीदास! अभी कितने दिन तेरा यही हाल रहेगा ?

काली०—कौन ? पिताजी! (सर झुकाकर) प्रणाम! क्षमा पिताजी! मुझे क्षमा करिये। मैंने बड़ा अपराध किया जो आपके उपदेशोंपर एक दिन भी ध्यान न दिया; परन्तु आजसे मैंने उन नीच कुकर्म्मोंको धिक्कारा है।

किशो०—तो क्या सच्चे हृदयसे कहता है ?

काली०—हाँ पिताजी! मैं सत्य कहता हूं। अब आजसे आपकी सेवाहीमें ध्यान लगाऊंगा, आप हीके चरणोंमें रहकर अपने कुकर्म्मोंका प्रायश्चित्त करूंगा।

किशो०—यदि ऐसा है तो मैंने तुम्हे क्षमा किया। आओ, पुत्र! आओ, मेरे गलेसे लग जाओ।

(दोनोंका गले मिलकर फिर कोचपर बैठना)

किशो०—पुत्र! बताओ, तुम क्या चाहते हो ? मैं तुम्हारे

सुखोंके लिये सब कुछ करनेको तैयार हूं।

कालीo—(स्वतः) बस, अब चूकना ठीक नहीं! (प्रकट) पिताजी! यदि आप प्रसन्न होंगे तो क्या अपनी धन-सम्पत्ति मुझे दिखा देंगे?

किशोo—हाँ दिखा दूंगा, सब कुछ बता दूंगा। मैंने अपने कठिन परिश्रमसे जो कुछ एकत्रित किया है, वह तुम्हारा ही है।

धन-संचय मात-पिता जो करें, नहीं अपना आप बनावनको।
रक्खें सन्तानका सुख लखके, धन हो सब उन्हें भुगावनको॥
वह आप चाहे सूखी खावें, उनको बहु वस्तु खिलावनको।
पर आयूभर धन गुप्त रखें, सुख दुःखमें लाभ उठावनको॥

देखो! मैं इस समय अपने आप एक साधारण मनुष्य बना हुआ हूं, परन्तु इस समय भी दो लाख नकद और प्रायः तीन लाखके हीरे, पन्ने और मोती मेरे पास पड़े हैं। फिर भी, मैं एक साधारण वेशमें अपनी अन्त अवस्था बिता रहा हूं। इसीसे देख लो कि मुझमें और तुममें कितना अन्तर है! मैं यदि आज अपनी जमींदारीमें नङ्गा होकर भी चला जाऊं तो लाखों रुपये वहाँसे ला सकता हूं। पर किसके वास्ते? जब तुम्हीं मेरे लिये नहींके बराबर हो तो मैं यह सब परिश्रम किसके वास्ते करूं? क्या मैं यह धन उठाकर अपनी छातीपर ले जाऊंगा? नहीं नहीं पुत्र! यह सब कुछ तुमको ही दे जाऊंगा।

कालीo—तो यदि आप मुझे एक बार अपना वह गुप्त खजाना दिखा देंगे तो मैं भी आपका आज्ञाकारी होकर रहूंगा।

किशोo—(कमरसे एक चाभी निकालकर) तो ले और जा, मेरे

शयनगृहके मध्य भागमें जो पटरा जमीनपर जड़ा हुआ है! उसे उठानेपर तुम्हें सीढ़ियाँ दिखायी देंगी, उसी रास्तेसे तहखानेमें उतर जाना। परन्तु सावधान! नीचे जानेपर तुम्हें एक सर्प बैठा हुआ दिखायी देगा, उससे भयभीत न होना, सर्पके पास जाकर उसकी गरदनको पकड़कर जोरसे खींचना, उसी समय एक आवाज होगी और जहाँ सर्प बैठा है वहींपर फर्शमें लगा हुआ पटरा हट जायगा और एक लोहेका बना सन्दूक तुमको नजर आयगा। उसी सन्दूककी यह चाभी है, पर देखना, यह भेद किसीको न बताना और वहाँसे एक पैसा भी न उठाना। बस, जाओ और शीघ्र देखकर चाभी मेरे पास लाओ।

(चाभी देता है)

काली०—(चाभी लेकर) तो ऐसी जल्दी क्या है? किसी समय अकेलेमें जाकर देख आऊंगा। पहले तो मैं आपकी सेवामें जाता हूं। समय हो गया, आपके वास्ते चाय लाता हूं। (जाते जाते स्वतः) और शीघ्र ही आपको यमलोक पहुंचाता हूं।

(इतनेमें जीवन एक प्याला चाय लेकर आता है और वह प्याला किशोरीलालके सामनेवाले छोटे टेबिलके अन्दरवाले भागमें रखकर किशोरीलालके कानमें कुछ कहकर चला जाता है। दूसरी ओरसे कालीदास एक प्याला चाय लेकर आता है और टेबिलपर रख देता है।)

काली०—(स्वतः) बस, एक ही प्यालेमें बेड़ा पार। ((प्रगट) लीजिये, पिताजी! चाय पीजिये। (एक कुरसीपर बैठ जाता है)

किशो०—(प्यालेको टेबिलके अन्दरवाले भागमें रखकर) काली-

दास ! यह तो बताओ, कि तुम्हारे विचार इतनी जल्दी कैसे बदल गये ? तुमपर किसकी शिक्षा प्रभाव जमा गयी और किस की बात तुम्हारे मनको भा गयी। फिर मुझे कैसे विश्वास हो, कि तुम मेरी इच्छानुसार कार्य करोगे ?

काली०—पिताजी ! मित्र दुर्गादासकी कृपासे मेरे विचार बदल गये। उनका ही उपदेश काम कर गया। अब आपको शीघ्र ही मेरा विश्वास हो जायगा। परन्तु पहले चाय तो पीजिये।

किशो०—पीता हूं। (प्याला उठाकर पीते हुए) परन्तु मुझे सन्देह होता है, कि तुम मेरी धन-सम्पत्ति पाकर फिर अपने कुकर्म्मोंमें पड़ जाओगे और मेरे कठिन परिश्रमसे एकत्रित की हुई सम्पत्ति दोनों हाथोंसे लुटाओगे।

काली०—(स्वतः) इससे पहले ही तुम संसारसे उठ जाओगे। (प्रकट) पिताजी ! आप तो वृथा ही सन्देह करते हैं ! क्या आज ही आप मेरे विचारोंमें अन्तर नहीं देखते ? सचमुच ही मैं अब दूसरा हो गया ?

किशो०—(कुछ व्याकुल होकर) अन्तर तो देखता हूं, पर क्या तुम्हारे ये विचार स्थायी होंगे ? (और व्याकुल होकर) हैं ! यह क्या ? मैं इतना व्याकुल क्यों हो रहा हूं ? (छातीपर हाथ धरकर) आह ! हृदय फटा जाता है, सर चकराता है। (अत्यन्त व्यकुलतासे) आह, यह क्या ! यह क्या !!

काली०—(स्वतः) बस, अब तीर निशानेपर लगा। (लपक कर किशोरीलालके बदनपर हाथ फेरता हुआ) हैं ! पिताजी ! आप इतना क्यों घबड़ा रहे हैं ? (स्वतः) यमके दूत बुला रहे हैं !

किशो०—आह ! बोला नहीं जाता है ! (छटपटाते हुए) ओह ! प्राण गया, प्राण ग···या—(हिचकी लेकर कोचपर गिरकर छटपटाता है और मर जाता है)

काली०—(स्वतः) चलो छुट्टी हुई (प्रकट जोरसे) अरे कोई आओ, पिताजीको क्या हो गया !

(अन्दरसे जीवन, मनोरमा और दो दासियोंका आना और देखकर आश्चर्य करना, मनोरमाका किशोरीलालके पास खड़े होकर घबड़ाना)

जीवन—(स्वतः) हैं ! कहीं स्वामीने धोखा तो नहीं खाया ? (पास जाकर किशोरीलालके बदनपर हाथ लगाकर देखता और रोने लगता है) हाय स्वामी आप कहाँ गये !

मनो०—(रोती हुई) हा ! मेरे धर्म पिता ! यह तुम्हें क्या हो गया ! (रोती है)

काली०—(झूठमूठ रोता हुआ) हा ! पिताजी !! यह सहसा क्या जाने क्या हो गया ! हा !! पिताजी !!

जीवन—(रोता हुआ) कालीदासजी ! यह सहसा इन्हें क्या जाने क्या हो गया । (प्रकटमें रोता है और मनमें हँसता है)

मनो०—आह ! अब मुझे तो कोई सहारा न रहा । (रोती है)

जीवन—हा ! अब हम किसको स्वामी कहेंगे ? (रोता है)

काली०—(सबसे) तो अब रोने धोनेसे क्या होगा ? क्या सदैव ये जीते ही बैठे रहते ? उठाओ और ले चलो बाहर। जीवन ! तुम जाकर सगे सम्बन्धियोंको खबर कर दो।

मनो०-(कालीदाससे) क्या पिताजीके मरते ही यह विचार ?

काली०—(आँखें निकालकर) विचार क्या? जब मर गये तो फिर अब क्या रोना-धोना है? अब क्या होना है?

मनो०- स्वामी! यह क्या कह रहे हैं? :—

मृत्यु पिताकी होते ही चेहरा बदल गया।
जो कुछ भी भय था रह गया, सो भी निकल गया।

काली०—तो क्या यह भी शिक्षा देनेका समय है! जो तर्क करती हो? बस, सगे सम्बन्धियोंके आते ही इन्हें सब मिलकर श्मशानमें पहुंचाओ, मैं भी कमलाको लेकर वहीं आता हूं।

(कालीदास जाना चाहता है, मनोरमा पल्ला पकड़ लेती है)

मनो०—ठहरो, कहाँ जाते हो? क्या इनकी दाह-क्रिया भी कुछ न करोगे?

काली०—उसके लिये तुम सब बहुत हो।

जीवन—स्वामी! यह क्या कर रहे हैं? लाशको इसी तरह छोड़कर मत जाओ! ऐसे कठोर न बन जाओ। इस समय ऐसा विचार मनमें न लाओ, अपने आपको ऐसा पतित न बनाओ, संसार क्या कहेगा?

काली०—जीवन! तुम्हें मेरे सामने बोलनेका कोई अधिकार नहीं। बस, जाओ, जो कहा है सो करो, सब जगह समाचार पहुंचाओ और शीघ्र आकर लाशको उठा ले जाओ। मैं इस समय ठहर नहीं सकता।

मनो०—स्वामी! मैं जानती हूं, कि अब मुझे आपके दर्शन न होंगे। भला यह तो बताइये, कि अब हम सबकी खबर कौन लेगा?

कालौ०--मनोरमा ! मुझे छोड़ दे, मैं इस समय कुछ भी नहीं सुन सकता ।

(कालीदास पल्ला झटककर चला जाता है । मनोरमा बेहोश होकर गिर पड़ती है । जीवन बेहोश मनोरमाको आश्चर्य्यसे देखता है । दासियाँ पास खड़ी रोती हैं ।)

दूसरा अङ्क

दृश्य पहला ।

[स्थान—एक सजा नवीन गृह]

(बीचमें दो कोच तथा कुछ कुर्सियाँ पड़ी हैं, एक तरफ कोनेमें एक छोटासा टेबिल रक्खा है, जिसपर कागज कलम दावात रक्खी है, दूसरी तरफके एक कोनेमें एक लैम्प जल रहा है ।)

(मनोरञ्जन तथा रजियाका एक साथ एक दूसरेका हाथ पकड़े हुए आना और एक साथ कोचपर बैठ जाना)

मनो०—प्यारी रजिया ! मैंने तो अपना प्रण पूरा कर दिखाया। तुम्हारी आयु भरके लिये यह सुखोंका सामान जुटाया। कालीदासको उलटी सीधी पट्टी पढ़ाकर यह घर बनवाया। गहना कपड़ा, नौकर, चाकर, गाड़ी, घोड़ा इत्यादि उससे दिलवाया। परन्तु तुमने आजतक इन सब बातोंका क्या बदला चुकाया ?

रजिया—(मुस्कराकर) मगर मैं हूं किस लायक जो आपके एहसानोंका बदला चुकाऊँगी ?

उम्रभर भूल ही सकती नहीं, एहसान तेरा ।
बदले नेकीके करेगा भला रहमान तेरा ॥

मनो०—(मुस्कराकर)

भला करना है तो, तुम ही करो ऐ जान मेरा।

अब तो पूरा करो, एक दिलका है अरमान मेरा !॥

रजिया—(नखरेसे)

आपको दे चुकी मैं, दिल तो मेहरबान मेरा।

दिल तो मुद्दतसे ही था, आपपर कुरबान मेरा॥

(प्यारसे) प्यारे मनोरंजन ! अब तुम्हारे अरमान पूरे होनेमें देर नहीं। उस बेवकूफ कालीदासके पास जो कुछ बाकी रह गया है, वह सब हथियाकर उसे धता बताऊँगी और फिर तुम्हारे ही पहलूमें तमाम उम्र बिताऊँगी।

(गायन)

वारी जाऊँ तोपै, मोरे प्यारे दिलदार हो।

साँवरे सलोने पै, न जिया क्यों निसार हो ॥वारी॥

मनमें बसी तोरी, प्यारी सुरतिया।

नयन कटारी तोरी, जियराके पार हो ॥वारी ॥

तुम रस रंग रंगे दिल मेरे।

तुम ही तो प्यारे ! मेरे सोलहो सिंगार हो ॥वारी॥

मनो०—यह तो तुमने मेरे मनकी कही। (नेपथ्यकी ओर देखकर) तो बिलम्ब क्या है ! वह सामनेसे कालीदास आता है, आज ही अपना वार चलाओ, खेजका झगड़ा ही मिटाओ।

रजिया—(नेपथ्यकी ओर देखकर धीरेसे) तो जरा यहाँसे हट जाओ, कुछ ठहरकर आओ और मेरी हाँमें हाँ मिलाओ।

मनो०—ठीक है। (शीघ्रतासे एक तरफ चला जाता है)

(रजिया उदास चेहरा बनाकर कोचपर लेट जाती है, कालीदास
आकर पहले रुकता है, फिर बढ़कर रजियाके पास
बैठकर उसे आश्चर्य्यसे देखता है।)

काली० —

हैं ! आज क्यों मनकी कली, दिखती है मुरझाई हुई ?

है आज क्यों मुखचन्द्रपर, काली घटा छायी हुई ?

रजिया—(उठकर)

कुछ नहीं, एक बात दिलपर, आज है आयी हुई।

है तबीयत इसलिये कुछ, योंही सहमायी हुई॥

काली०—पर कुछ कारण तो बताओ :—

किस लिये नाजुक तबीयत, गम जरा सहती नहीं ?

प्रेम-धारा आज क्यों मेरी तरफ बहती नहीं ?

रजिया—प्यारे ! क्या कहूं ? किस तरह कहूं ?

तुमसे छिपाऊँ बात, तो मनमें छिपी रहती नहीं।

दिल तो सबब कहता है पर मेरी जबाँ कहती नहीं॥

काली०—प्यारी रजिया ! अपना हाल मुझसे न छिपाओ, मनके सारे दुःखोंको दूर हटाओ, जो कुछ हाल हो, सत्य ही कह जाओ।

रजिया—(ठंडी साँस लेकर) क्या कहूं, मैं तो तुम्हारी कुन्दनसे लाचार हो गयी। उसकी फजूल-खर्चोंसे बेजार हो गयी। कम्बख्त कल नीलाममें, चुपचाप गयी और पच्चीस सौकी एक-फिटिन गाड़ी और पाँच हजारका एक हीरेका कण्ठा खरीद लायी। आप जानते ही हैं, कि मेरे पास जो कुछ रुपये थे, सब खर्च हो गये।

अब आज कहाँसे रुपये लाकर चुकाऊँ ? हर-रोज आपके आगे भी रुपयेका सवाल भला कैसे उठाऊँ ?

(कालीदास सुनकर चुपचाप कुछ सोचने लग जाता है। रजिया छिपी निगाहसे कालीदासकी तरफ देखती है। मनोरञ्जन आता है और दोनोंको चुपचाप बैठे देखकर खड़ा रहता है)

मनो—(स्वतः) मालूम होता है, कि रजियाने अपनी चाल चली है।

(मनोरञ्जन आगे बढ़ता है। रजिया देखकर मुस्कराती है और इशारेसे कालीदासको दिखाती है। मनोरञ्जन कालीदासके पास बैठता है।)

मनो०—(कालीदासके कन्धेपर हाथ रखकर) कालीदास ! क्या सोच रहे हो ?

काली०—(चौंककर)अहा मनोरंजन ! क्या भाई ! तुम कहाँ थे ?

मनो०—स्वर्गकी आखिरी सीढ़ीपर। परन्तु आज बात क्या है ?

हँसी खुशीकी जगह आज यह कैसा गड़बड़ झाला है ?
तुम भी चुप और यह भी चुप, हैं ! यह क्या ढङ्ग निकाला है ?

रजिया—मनोरंजन ! अगर मैं जानती कि मेरा सवाल इन्हें चक्करमें डाल देगा, तो कभी बात ही न उठाती।

काली०—नहीं नहीं रजिया ! तेरी बातोंने मुझे सोचमें नहीं डाला है।

मनो०—तो फिर बात क्या है जो ऐसा स्वाँग निकाला है ?

काली०—मेरे सोचमें पडनेका कारण यह है, कि आज

रजियाने कुछ रुपयोंकी बात उठायी, जिसके सुनते ही मुझे अपनी बीती याद आयी। भला; तुम्हीं बताओ कि जब मैंने अपना सारा धन इसको अर्पण कर दिया, तब क्या छः सात हजारके लिये सोच विचार करने बैठता? पर बात यह है, कि जब मैं अपने उस गुप्त तहखानेसे सब रुपये ले आया, उस समय प्रायः तीन लाखके जवाहरात वहाँ छोड़ दिये पर आज मैं देखता हूं कि वहाँ कुछ भी नहीं है। न जाने वह माल वहाँसे किसने उड़ाया। बहुत कुछ उद्योग किया पर कुछ पता न पाया और निराश होकर यहाँ चला आया। आते ही एक सवाल रजियाने सुनाया, बस, इन्हीं बातोंमें मैं चकरा गया। अब तुम्हीं बताओ, कि मैं रुपये कहाँसे लाऊँ?

रजिया—देखा मनोरंजन! कैसा अनोखा जवाब है?

राजाके घरमें भी कभी क्या मोतियोंका काल है?
देख लो देना पड़ा, तो यह निकाली चाल है॥

(रजियाका मनोरञ्जनको कुछ कहनेका इशारा करना।)

मनो०—नहीं नहीं रजिया! यह तुम्हें बना रहे हैं, क्या इतना भी नहीं समझती?

काली०—तो क्या मैं वृथा ही इतना बक गया जो तुम सब मुझे बातोंमें उड़ाने लगे? रजिया! मैं सत्य कहता हूँ, यदि आज यह घटना न घटी होती तो मैं कभी तुम्हारी जबान खाली न करता।

अपनी बीती कही, हुआ पर तुमको कुछ एतबार नहीं।
लाखों अबतक दिये तुम्हें, अब देता सात हजार नहीं?

रजिया—तो बस, समझ गयी। अब आप मुझे नहीं चाहते, इसी लिये इन्कार करते हैं। मतलब यह, कि किसी औरको प्यार करते हैं।

काली०—रजिया! क्यों ऐसे ताने मारती हो? क्या कालीदास ऐसा नीच हो गया, कि तुम्हें छोड़कर दूसरीसे प्यार करेगा! नहीं नहीं, यह तेरा सच्चा प्रेमी तेरे ही प्रेमपर मरा है और तेरे ही प्रेममें मरेगा।

मनो०—तो इन बातोंमें क्या रक्खा है? इस बातको अधिक न बढ़ाओ। यदि इस समय हाथमें रुपये नहीं हैं तो कहींसे उधार ही लेकर काम चलाओ।

काली०—(चिढ़कर) तो तुम्हीं न ले आओ। क्या तुम्हारे पास मेरे रुपये नहीं हैं जो बातें बनाते हो? आपसमें कलह कराते हो!!

मनो०—वाह भाई वाह! तुमने तो अच्छी सुनायी। मेरे पास अगर तुम्हारी एक पाई भी आयी तो मैंने तुम्हीं लोगोंके खर्चमें लगायी। हाँ, यदि ऋण लेना चाहते हो जितना कहो अभी ला देता हूं।

काली०—(स्वतः) तो क्या डर है? अभी तो अस्सी हजारकी लागतका यह घर है। क्या हुआ उधार ही लेकर झगड़ा चुकाऊं। (प्रकट) अच्छा, तो लाओ, कहींसे उधार ही लाओ!

मनो०—हैं! न रसीद न रुक्का और लाओ!

काली०—हाँ हाँ, यह तो तुमने दस्तूरकी बात कही। लाओ कागज और कलम-दावात अभी रसीद लिखे देता हूं।

(मनोरञ्जन टेबिलपरसे कागज और कलम दावात लाकर कालीदासके आगे रख देता है। कालीदास रसीद लिखता है)

मनो०—ठहरो, ठहरो, क्या लिखते हो? कितना रुपया लिखते हो?

काली०—सात हजार और कितने?

मनो०—वाह, भाई वाह! बड़े सयाने ठहरे! क्या उधार देनेवाले जितना देंगे उतना ही लिखवायेंगे? और कमानेकी जगह बैठकर हजामत बनायेंगे? नहीं, अगर सात हजार देंगे तो इक्कीस हजार लिखायेंगे, तब कहीं रुपयेकी सूरत दिखायेंगे।

काली०—(आश्चर्यसे) हैं! यह क्या!! एक लेना और तीन देना? नहीं नहीं, मैं ऐसा नहीं कर सकता। (कागज कलम रख देता है।)

(मनोरञ्जन रजियाको कुछ कहनेका इशारा करता है)

रजिया—मनोरंजन! तुम किससे बातें कर रहे हो? यह क्या देंगे! एकका तीन देनेका उन्हींका कलेजा होता है, जो प्यारके सामने रुपये पैसेको मिट्टी समझते हैं।

काली०—(स्वतः) हैं! एकही दिन न देनेसे कंगाल बनना पड़ा!! (प्रकट) तो क्या तुम सबने मुझे मुर्दा ही समझ लिया? लाओ, मैं तिगुना ही लिखता हूं। (स्वतः) बात तो रह जायगी।

(कालीदास कलम दावात लेकर लिखता है, मनोरञ्जन जेबसे एक टिकिट निकालकर देता है। कालीदास लेकर रसीदपर चिपका कर सही करता है और रजियाके सामने फेंक देता है, रजिया उठाकर मनोरञ्जनको देती है।)

काली०—(रजियासे) लो, अब तो प्रसन्न हुई?

रजिया—क्या कहूं प्यारे! मैं तो खुद ही तुम्हारी हालत सुनकर रंजीदा हो रही थी, पर क्या करूं? मौका ही ऐसा आ पड़ा।

काली०—(कुछ रुखाईसे) रहने दो, रहने दो! तुम्हारा प्यार केवल पैसेका है!

रजिया—यह तो आप जानते ही हैं, कि पैसे बिना हम सबके यहाँ पैर रखना भी मुश्किल है। आप तोअभीसे ही घबड़ा गये, अभी तो इस नये मकानकी दावतमें तीन चार हजार रुपये खर्च होंगे।

काली०—तो क्या वह भी मुझसे ही लोगी?

रजिया—और दूसरा है ही कौन?

काली०—तो फिर रोजकी हत्या मिटाओ। इस घरको बेंच डालो और भाड़ेके मकानमें चलकर जो कुछ रुपया रहे, उसीसे काम चलाओ।

रजिया—(आँखें चढ़ाकर) "मकान बेच डालो?" कौन सा मकान?

काली०—यही, अपना मकान और कौन?

रजिया—यह तो मेरा मकान है, इसे कौन बेच सकता है?

काली०—(आश्चर्यसे) तेरा कैसे हुआ? यह तो मैंने बनवाया है न?

मनो०—पर भाई! रजिया तो कहती थी, कि ईंट पत्थर, लोहा लकड़ी, सुर्खी, चूना इत्यादि सब मेरे नामसे आया है और पट्टा भी आपने रजियाके ही नामसे लिखवाया है।

कालीο—(चौंककर) तो क्या उस दिन नशेमें मैंने रजियाके नामसे पट्टा लिखाया है ?

रजिया—तो क्या आपको आज याद आया है ? (मुस्कराकर) वाहवाह ! अच्छा मकानपर हाथ मारा !

(रजिया मनोरञ्जन को कुछ कहने का इशारा करती है)

कालीο—(स्वतः) आह ! इसने तो मेरा सर्वस्व हरण करनेकी ठानी है। (प्रकट) तो फिर मेरी रसीद मुझे लौटा दो। मैंने तो इसी सम्पत्तिके जोरपर इसे लिखा है, जब तुम यह मकान भी अपना ही बना बैठी हो, तो फिर मैं रुपये कहाँसे लाकर चुकाऊंगा ?

मनोο—रसीद ! कैसी रसीद ? लाओ, पहले इक्कीस हजार रुपये चुकाओ।

कालीο—(चौंककर आश्चर्यसे) हैं ! न लिया न दिया और चुकाओ !! मनोरञ्जन ! तुम मेरे मित्र होकर भी इसकी हाँमें हाँ मिलाते हो ?

रजिया—क्यों न मिलावेंगे ? यह तो मेरे पुराने आशिक हैं।

कालीο—(आश्चर्यसे) तो क्या मनोरंजन ! तेरे ही स्वार्थके लिये मुझसे झूठा प्यार करता था ?

मनोο—नहीं, तो क्या मैं आपका कोई रिश्तेदार था ?

कालीο—(ठडो साँस लेकर) समझा, समझा और अच्छी तरह समझा। आह ! मैंने धोखा खाया, (कड़ी दृष्टिसे देखता हुआ) रजिया, क्या अब मेरा प्रेम तेरे लिये भारी हो गया ?

रजिया—(रुखाईसे)

पास जिसके हो न पैसा, हमको प्यारा नहीं।
हम सभोंके पास बिन पैसे, गुजारा नहीं॥

काली०—(क्रोध दबाकर) रजिया! रजिया!! मैं नहीं जानता था, कि तू अन्तमें यह बर्त्ताव करेगी। रजिया! क्या तू वही रजिया है?:—

कहाँ मन्द मन्द मुस्काना, कहाँ हँसके गले लगाना।
वह नयनके वाण चलाना, देखे बिन कल नहिं पाना॥
ऐसा दृढ़ प्यार जताना, जगमें बदनाम कराना।
फिर उस प्रेमीके धनको हरके, उलटे आँख दिखाना?

रजिया—

कौन बड़ा धन दिया तूने? बड़े बने धनवाना।
तुमने क्या कुछ नया दिया है? देता रोज जमाना॥

काली०—आह!

झख मारना है रण्डियोंसे प्यार लगाना।
अपनेको अपने हाथसे मिट्टीमें मिलाना॥
चङ्गुलमें इनके फसके है धन-धाम लुटाना।
इनके लिये थोड़ा ही है, कारूंका ख़ज़ाना॥

रजिया—(आँखें लालकर)

देखो! न मेरी शानमें, कुछ और सुनाना।
चल दूर, किसी औरको यह ज्ञान सिखाना॥
हम सबका यही काम है, दानोंका फसाना।
एक रोज़ यहाँ फसता है, दानेसे भी दाना॥

(रजिया मनोरञ्जनको इशारा करती है)

मनो०—(कालीदाससे)

बस देखना, बकबक न कहीं और लगाना।
चाहो जो भला, इस जगह फिर मुँह न दिखाना।

काली०—(क्रोध दबाकर रुपयेका संकेत करते हुए)

लेनेको पकड़ लाता था, अब दूर हटाना।
उसको ही सताना कि जिसे मित्र बनाना॥
तुझे भी तो एक रोज है फल कर्म्मका पाना।
होगा न तेरा नरक भी देख ठिकाना॥

रजिया—(आँखें निकालकर) कालीदास! भला चाहते हो तो यहाँसे सही सलामत चले जाओ।

काली०—(क्रोधपूर्वक) ओ नरकगामिनी! क्या एक अनजान आदमीको अपने कपट-प्रेममें फसा, अच्छी तरह उसका धन खाकर आज इस तरह घरसे निकाल रही है? क्या यही तेरा धर्म है? जो मेरा सर्वस्व अपने हाथमें लेकर मुझे एक अँधेरे कूएँ में डाल रही है? बता! बता!! मैंने तेरे लिये क्या नहीं किया?:—

तूने जो जो कहा, मैंने भी वही मान लिया।
हाँ! तेरे प्यारमें मुश्किलको भी आसान किया॥
बापकी जान ली, नारीको बीरान किया।
धन दिया धाम दिया, अपनेको हैरान किया॥
धर्म और कर्मको, मिट्टीकी तरह जान लिया।
मुँहसे चूती हुई, लारों को तेरी पान किया॥

घरको उजाड़ तेरे वास्ते, श्मशान किया।
तूने इन सबके ही बदलेमें, यह सम्मान किया ॥

रजिया—(मुंह बनाकर)
जाइये खूब किया, आपने एहसान किया।
आपने दाम दिया, मैंने भी ईमान दिया ॥

काली०(डपटकर)
बस बस अब जातको रण्डीकी भी पहचान लिया।
यही समझूंगा, कुछ भिखारियोंको दान किया ॥

मनो०—(खिलखिलाकर हँसते हुए)
बाप तो जोड़ मरे; पुत्रने वह दान किया।
प्यार बाजारमें करनेका इम्तिहान लिया ॥

काली०—(अत्यन्त क्रोधित होकर)
जो किया नाश किया, तूने ही शैतान ! किया।
नीच ! निर्लज्ज !! तेरे वापने मैदान किया ॥

रजिया—(क्रोधपूर्वक उठ, और हाथमें अपने पैरका जूता उठाकर कालीदासकी तरफ झपटती हुई) अब जाता है या जूतेसे बात करूं ?

काली०—(पीछे हटता हुआ) बस, बस, रजिया ! यहींतक रहने दे। मैं आप चला जाता हूं ।(कुछ दूर जाकर अत्यन्त पश्चात्तापसे) देखो देखो, दुनियावालो ! देखो।

देख लो ऐ भाइयो ! इस नरकके दरबारको।
देखलो युवकोंके ऊपर, प्रबल अत्याचारको ॥
देख लो वेश्याको भी देखो ये कपटी यारको।
देख लो मुझको, मैं आया था यहाँ व्यभिचारको ॥

प्रेमियो ! तज दो अभी, वेश्याके झूठे प्यारको ।
जो भला चाहो, न छोड़ो भूलकर निज नारको ॥
दूर कर दो हृदयसे, इस मौतके हथियारको ।
हो न ऐसा अन्तमें, जाना पड़े यमधामको ॥

(स्वतः) अब कहाँ जाऊँ ! किधर जाऊँ !! यह काला मुँह लेकर किसके सम्मुख जाऊँ !!! (सोचकर) क्या घर जाऊँ ? (चौंककर) नहीं नहीं, वहाँ भी मेरे घोर अत्याचारोंकी विकराल मूर्त्ति मुझे भक्षण करनेके लिये खड़ी होगी। धिक्कार है मुझपर ! थूको दुनियावालो ! मुझपर थूको ! अहा ! मुझपर थूको। हा ! मुझसे पापी कुकर्मी, निर्लज्ज, अधर्मी दूसरा नहीं होगा। हा ! अब इस अर्द्धरात्रिके समय किसकी शरणमें जाऊँ !! किसको अपने कुकर्मकी कहानी सुनाऊँ !!! (कुछ सोचकर) हाँ संसारमें माताके समान हित करनेवाली बहिन होती है। जाऊँ, जाऊँ, उसके पास जाऊँ (कुछ सोचकर) परन्तु क्या वह अपने व्यभिचारी भाईको शरण देगी ? (ठहरकर) हाँ देगी, वह अपने द्वारसे भाईको न निकालेगी, धर्म पालेगी। (रजिया और मनोरञ्जनकी तरफ देखकर प्रगट) दूर हो जाओ, ऐ नरकके जहरीले बिच्छुओ ! मेरे सामनेसे दूर हो जाओ। तुम सबने मुझे लूट लिया, मेरा सर्वस्व हरण कर लिया। मेरे सुखोंका संसार अँधेरा कर दिया. .

(कहता कहता कालीदास बेहोश होकर गिर पड़ता है। रजिया और मनोरञ्जन दोनों खड़े आश्चर्य्यसे देखते हैं।)

दृश्य दूसरा ।

[स्थान—एक दालान]

(अर्द्धरात्रि बीत चुकी है, चारों तरफ अंधेरा है । कमला चारों तरफ देखती हुई, दबे पाँव आती है । दो बजेका घण्टा बजता है । कमला चौंक उठती है । फिर कुछ स्थिर होकर इधर उधर देखती हुई, अपनी कमरसे एक छूरी निकालती है)

कमला०—(स्वतः) बस, प्रेमके सन्मुख पतिकी जीवन-यात्रा समाप्त करनेका समय आ गया। निश्चिन्त होकर प्रेमपथ-पर विचरनेका समय आ गया । जाऊँ! जाऊँ!! प्यारे हरकिशोर-की सिखायी हुई विद्याको काममे लाऊं । (सहसा कुछ सोचकर) कहाँ जाऊं ? क्या पतिकी हत्या करने ? (रोमाञ्चित होनेका नाट्य करती हुई) नहीं, नहीं, मुझसे भीषण हत्याकाण्ड न होगा। (छूरीको देखती हुई) दूर हो, दूर हो, मेरे निर्दोष पतिके रक्तसे अपनी प्यास बुझानेवाली, डाकिनी दूर हो । (छूरी फेंक देती है) ओह! कैसा नीच विचार है? धिक्कार कमला! तुझपर धिक्कार है! (सोचकर) नहीं, प्यार! प्यारका आदेश है यदि मैं प्रेमके आगे भेंट न चढ़ाऊंगी तो अपनी सच्चाईका विश्वास कैसे दिलाऊंगी ?

(कमला छूरी उठाकर देखती है । हीरालाल आता है और कमलाको देखकर चौंककर वहीं रुक जाता है ।)

हीरा०—(स्वतः) यह क्या ! इस कोमलाङ्गीके हाथमें शस्त्र ?

क्या उस पापी हरकिशोरके प्रेमसे आत्महत्या करना तो नहीं चाहती है? (सोचकर) पहले समझ लेना चाहिये कि क्या बात है।

(कुछ हटकर खड़ा रहता है)

कमला—(स्वतः छुरीको तरफ देखती हुई) क्या तू मुझे सदैवके लिये निष्कण्टक कर देगी? मेरे लिये सुखोंका भण्डार भर देगी? (ठहरकर) आती हूं, प्यारे हरकिशोर! आती हूं और पतिको ठिकाने लगाकर तुम्हें अपने सच्चे प्यारका विश्वास दिलाती हूं। (कुछ सोचती है)

हीरा०—(चौंककर स्वतः) क्या पतिकी हत्या करनेपर उतारू है? बस, अपने मित्र मदनका प्राण बचाना चाहिये और उस पापी हरकिशोरके पञ्जेसे इसे छुड़ाकर अपने हाथमें लाना चाहिये।

कमला—(स्वतः) जाऊं और उस अज्ञान पतिका जीवन प्रदीप बुझाऊं।

(कमला जाना चाहती है, हीरालाल लपककर उसका हाथ पकड़ लेता है, कमला डर उठती है और छुरी हाथसे फेंक देती है और चुपचाप कठपुतलीकी तरह खड़ी रह जाती है। सिर झुकाए)

हीरा०—कहाँ जाती है? कहां जाती है। ऐसा अनर्थ न कर। ईश्वरसे डर। कमला! कमला!! मैं बिना हत्याके ही तेरी मनोकामना पूर्ण करनेको तैयार हूं। भूल जा, भूल जा। उस पिशाच हरकिशोरको भूल जा। वह तेरा सत्यानाश करके भी अन्ततक न निभायेगा और यह तेरा नवीन प्रेमी यदि तेरे हृदयमें

स्थान पायगा तो तेरा जीवन सुखसे बितायगा। बस, अब मुझे अपया चिरसंगी बना। उस निर्दोष पतिका रक्त न बहा। ऐसे नीच विचारोंको दूर हटा।

कमला--(स्वतः) पापोंका परिणाम इसको कहते हैं। अब क्या करूं। (सोचकर)बस, अब त्रिया-चरित्रको काममें लाऊं।

हीरा०---क्यों सुन्दरी! क्या विचार कर रही हो।

कमला—मुझे बड़ा दुःख होता है, कि आप अपने मित्रकी स्त्रीके सन्मुख ऐसा घृणित भाव प्रकट कर रहे हैं। यह क्या आपको शोभा देता है। सावधान! एक गृहस्थकी कन्याके प्रति ऐसी पाप-कामनाओंको मनमें स्थान देना आपके लिये दुःखदायक होगा।

हीरा०—(कठोरतासे) व्यभिचारिणी! तेरे इन बनावटी भावों से मैं भयभीत होनेवाला नहीं। बस अब मुझे यह उत्तर दे, कि तू मेरी इच्छा पूर्ण करेगी, या अपने सब सुखोंको चूर्ण करेगी। कमला! कमला!! तू यह न समझ, कि मैं तेरे कुकर्मोंसे अज्ञान हूं; मैं उस समयसे तेरा पीछा कर रहा हूं, जिस समयसे तूने चुपचाप घरसे जेवर लेकर बाहर पैर निकाले और अपने ससुर और पिताकी कठिन कमाईको उस व्यभिचारी दुराचारी हर-किशोरके घरमें डाला। कमला! मैं सब कुछ जान गया हूं। तुझे पहचाना गया हूं। तू अपना धर्म-कर्म खो चुकी है, व्यभिचारिणी हो चुकी है, यदि मैं भण्डा फोड़ दूँ, तो तुझे तेरा पति भी ग्रहण न करेगा। परन्तु तेरा सौभाग्य है, कि मैं तेरे मनोहर रूपपर मोहित होकर तुझे क्षमा करता हूं। बोल, अब तेरी क्या इच्छा है?

कमला (स्वतः) हैं ! यह तो सब भेद जान गया !! बस, अब इसे अपने कपट-प्रेममें फसाऊं और इसीके द्वारा अपना कार्य कराऊँ और साथ ही साथ इस काँटेको दूरकर सदाके लिये निश्चिन्त हो जाऊँ। यदि यह जीवित रहेगा तो अवश्य ही मुझे इसके अधीन रहना पड़ेगा।

हीरा०—क्यों कमला! क्या विचार स्थिर किया?

कमला—(नीची गर्दन किये) अब मैं आपके सम्मुख उत्तर देने योग्य नहीं रही। जब आप मेरे सब भेद जान गये तो अब मैं आपके अधीन हूं। परन्तु आपको उचित है, कि आप मेरे प्रति ऐसा भाव न रक्खें, कारण यह प्रेमपथ बड़ा ही संकटमय होता है। आप अपने क्षणिक प्रेमको यहीं छोड़ दें तो आपको सुख होगा। आप मेरे पतिके मित्र हैं, आपका और मेरा सम्बन्ध होना योग्य नहीं। इस कारणसे मेरी प्रार्थना है, कि आप इस विषयको यहींतक रहने दें।

हीरा०—नहीं कमला! तू मुझसे दूर रहनेका प्रयत्न न कर; मेरा क्षणिक प्रेम भी उस दुरात्माके कपटप्रेमसे कहीं मूल्यवान है, मेरा हार्दिक प्रेम हटना कठिन ही नहीं, असम्भव है।

चुभ आज गई हियमें तुमरी, तीखे नयननकी कारी कटारी।
मन मोह लिया हमरा सुन्दरी! तुमरे बिन अब सगरो अंधियारी॥
सब छोड़ विचार करो करुणा, तुमरे हम तुम हमरी हो प्यारी!
इस नवरस-प्रेमके मन्दिरके; हमही सुन्दरी! अब होंय पुजारी॥

कमला—देखो इस मार्गमें काँटे अधिक होते हैं।

हीरा०—तो मैं वज्रके पैर बनाऊंगा।

कमला—आत्मा और विचार पापी हो जाते हैं।

हीरा०—तो मैं नरक भोगनेको तय्यार हो जाऊंगा।

कमला—प्रेम स्वतन्त्रता चाहता है।

हीरा०—तो मैं स्वतन्त्र होकर ही घर बसाऊंगा।

कमला—इसका प्रमाण ?

हीरा०—बढ़कर कसमसे मान ले, मेरी जबानको।
करता हूं तेरे आज हवाले, मैं जानको॥

कमला—मुझे विश्वास कैसे हो ?

हीरा०—यदि इसपर भी विश्वास नहीं तो परीक्षा ले ले !

कमला—विश्वासघात तो न करोगे ?

हीरा०—इस जीवनमें ऐसा कदापि न होगा :—
चाहती हो तो गला काटके, आगे मैं धरूं।
आगमें कूद पड़ूं, मौत जवानीमें मरूं॥
आफतें लाख भी आ जायँ, तो उससे न डरूं।
यह नहीं होगा कि मुखसे कहूं पूरा न करूं॥

कमला—तो बस, मैं भी आपकी दासी हो चुकी। परन्तु पहिली परीक्षा यह है, कि अपने प्रेमकी भेंट चढ़ाओ, बीचके कांटेको दूर हटाओ; एकके रक्तसे (छूरी उठाकर हीरालालको देती हुई) इसकी प्यास बुझाओ और स्वतन्त्र हो जाओ।

हीरा०—(छूरी लेकर) तो बताओ ! किसका रक्त चाहिये ? क्या उस पापी हरकिशोरका ?

कमला—नहीं, (कानमें कुछ कहती है, हीरालाल चौंक उठता है)

हीरा०—तो क्या मित्र मित्रका बध करे ?

कमला—क्यों, सोचमें क्यों पड़ गये ?

हीरा०—(स्वतः) अब क्या उत्तर दूँ ! सच्चा कौन है ! प्रेम या नेम ? (सोचकर) इस समय प्रेम ! प्रेम ! प्यारी कमलाका प्रेम और मर्दके मुखसे निकला हुआ शब्द । (प्रकट) स्वीकार है। प्यारी कमला ! तेरे वास्ते यह पिशाच-कर्म भी स्वीकार है।

कमला—तो रात्रि थोड़ी रह गयी है। जाओ और शीघ्र ही अपना कार्य समाप्त कर यहीं आओ।

(कालीदास आकर चौंकता है और वहीं रुककर आश्चर्य्य करता है।)

हीरा०—जाता हूं, जाता हूं, और प्रेमकी भेंट चढ़ानेके लिये अपने मित्रका वध कर आता हूं।

(कमला और हीरालाल धीरे धीरे कुछ बातें करते हैं।)

काली०—(स्वतः) आह ! यह कैसा काण्ड है ! क्या कमला व्यभिचारमें पड़कर पतिकी हत्या कराना चाहती है ? हे भगवन् ! यह मैं क्या देख रहा हूं ? (सोचकर) बस, जाऊं पहले उस निर्दोषकी जीवन रक्षा करूं और फिर कमलाका पीछा करूं !

(जाता है।)

हीरा०—परन्तु यहीं मिलना, मैं शीघ्र ही आता हूं।

(जाता है।)

कमला—(स्वतः) बस, अब मैं भी हरकिशोरको लेकर यहांसे चली जाऊं। यह पापी अपनी करनीका फल आप ही पायगा।

(कमलाका प्रस्थान)

दृश्य तीसरा।

[स्थान—घरकी एक बाहरदरी]

(दोनों तरफ दो पलंग बिछे हुए हैं, बीचमें एक ऊँची और छोटी चौकीपर एक लोहेकी तिजोरी रक्खी है, एक तरफ एक लैम्प बुझाया हुआ रक्खा है, पास ही एक कोच और दो कुर्सियां पड़ी हैं, एक पलंगपर मदन सोया है, दूसरा पलंग खाली पड़ा हुआ है, हीरालाल हाथमें कटारी लिये दबे पाँव आता है)

हीरा०—(स्वतः चारों ओर देखता हुआ, धीमे स्वरसे) रात्रि अधिक व्यतीत हो चुकी है। अब बिलम्ब करना वृथा है, (मदनकी ओर देखकर) बस, अब इसकी जीवन-यात्रा समाप्त हो गयी। (कुछ आगे बढ़कर) मैं कमलाको यह कहनेका समय न दूंगा कि हीरालाल विश्वासघाती है। (मदनके पलङ्गके पास पहुँचकर) मदन ! मदन !! तू नहीं जानता, कि तेरा ही मित्र तेरे सरपर काल-रूप धारण किये खड़ा है। क्या अब तुझे कोई मेरे हाथोंसे इस समय बचा सकता है ? नहीं। (सहसा चौंककर) हाँ, बचा सकता है। हीरालाल ही तेरी रक्षा कर सकता है। (सोचकर) नहीं, नहीं, मुझसे यह घोर अत्याचार न होगा। (रोमाञ्चित होकर) ओह ! मित्रका बध ! नहीं, नहीं, (कटारीकी तरफ देखता हुआ) दूर हो, मेरे मित्रका रक्तपात करनेवाली काल-प्रतिमा ! मेरे हाथोंसे दूर हो। (सहसा सोचकर) नहीं, नहीं; तेरा दूर होना और कमलाका मुझसे दूर होना एक ही बात है। तो अब क्या करूं ? (सोचकर)

हाँ, यही उपाय है, केवल यही उपाय है। आता हूं प्यारी ! आता हूं ! तेरे प्रेमकी भेंट चढ़ाता हूं ।

(हीरालाल कटारी तानकर मदनको मारनेके लिये आगे बढ़ता है और उसके पलगपर पैर रखकर वार करनेके लिये तय्यार होता है, सहसा अन्दरसे "खबरदार" की आवाज आती है। हीरालाल चौंक उठता है और फिर वार करना चाहता है, इतनेमें दोनों तरफसे कुछ सिपाही आकर उसे पकड़ लेते हैं। हीरालाल आश्चर्यसे उनकी ओर देखता रह जाता है। मदन उठ खड़ा होता है। उसी समय कालीदास वेगसे मदनके पिता "लेखराज" को साथ लिये आता है और हीरालालकी करतूत दिखाता है।)

दृश्य चौथा।

[स्थान—घरका एक दालान]

(लेखराज, कालीदास, और मदनका घबड़ाते हुए आना)

लेखराज— (हाथ जोड़कर) उपकार, भगवन् ! तेरा उपकार, तू धन्य है, तेरी मायाको कोई नहीं जान सकता; तू अनाथोंका नाथ है, असहाय बालकोंके हर घड़ी साथ है। (कालीदाससे) प्रिय कालीदास ! तुमने केवल मदनहीको नहीं, मेरे सर्वस्वकी रक्षा की। आह ! यदि ईश्वरकी गुप्त मायाके प्रतापसे तुम इस समय न उपस्थित होते तो न जाने यहाँ क्या अनर्थ हो जाता। कालीदास ! तुम्हें किन शब्दोंमें धन्यवाद दूं ।

कालीo—आप मुझे इन वचनोंसे लज्जित न करिये, धन्यवाद उसी परमात्माको दीजिये जो सबकी रक्षा करता है। मैं अभागा इन शब्दोंके योग्य नहीं।

लेख० जो हो, इस समय तुम्हारा उपकार मेरे जीवनकी रक्षाका कारण हो गया। हा! न जाने हमलोगोंका भाग्य क्यों फूटा हुआ है। तुम्हारे पिताकी अचानक मृत्युका असहनीय शोक हृदय-वेधन कर ही चुका था कि, ऊपरसे यह घटना घटी। परन्तु इस समय मेरी बुद्धि स्थिर नहीं। पहले यह बताओ, कि इस प्रकार एकाएक मदनपर यमका कोप क्यों हुआ और तुमने किस प्रकार इतनी शीघ्रतासे इसका प्रबन्ध किया? कुछ समझमें नहीं आता, कि इसका कारण क्या है।

कालीo—(स्वतः) हा! अब क्या करूं? क्या कमलाको कलंक लगाउं। उसे सदैवके लिये कलङ्कित करूं? नहीं इस समय उसकी लाज बचानी चाहिये।

लेख०—कालीदास! क्या विचार कर रहे हो? मेरा सन्देह दूर करो।

कालीo—(उदास चेहरा बनाकर) क्या कहूं! एक तो पिताकी मृत्युका दुःख, दूसरे अपनी बीती दुःखमय घटनाओंका शोक, सभी मिलकर इस समय मुझे पागल बना रहे हैं।

लेख०—परन्तु कुछ तो कहो, कि वह दुष्ट हीरालाल इसका परम मित्र होकर, इसका घोर शत्रु क्यों हुआ और कमला कहाँ गयी?

कालीo—मैं आज सहसा ही कमलाको घर ले जानेके लिये

यहाँ आया, परन्तु कमलाके न मिलनेपर इधर उधर घरमें उसे ढूंढ़ने लगा। दालानमे आते हो मुझे किसीकी आवाज सुन पड़ी, मैं उधर ही बढ़ा और हीरालालके हृदयोद्गार सुनकर शीघ्रतासे बाहर गया और रक्षकोंकी सहायतासे मदनको बचाया। परन्तु कमलाके सम्बन्धमे मेरा विचार स्थिर नही, मेरे विचारमें हीरालाल कमलाको पाप दृष्टिसे देखता था, वह उसके कपटमें नहीं आयी। हीरालालने उसे भय दिखाया और स्वतन्त्र होनेके लिये मदनकी हत्या करनेको तैयार हुआ। कमला भयभीत होकर कहीं घरके बाहर छिपी है या सम्भव है, कि घरकी ओर चली गयी हो।

लेख०—अवश्य, अवश्य, यही घटना है।

काली०—तो इस समय मुझे जानेको आज्ञा दीजिये, मैं जाकर कमलाका पता लगाता हूं।

लेख०—जाना ही चाहिये; परन्तु मुझे शीघ्र ही सूचित करना। मैं भी जाकर खोज लगाता हूं और फिर न्यायालयकी ओर जाता हूं।

(सबका प्रस्थान, कालीदासका पुनः प्रवेश)

काली०—(अत्यन्त पश्चात्तापके साथ कर्कश स्वरसे) मैं हूं, इन सब पापोंका कारण मैं हूं, यह मेरे ही व्यभिचारकी प्रचण्ड अग्नि विकराल रूप धारणकर मुझे और मेरे सम्बन्धियोंको भक्षण करने आ रही है। हा ! यदि मैं अपने घरमें इस विषयकी चर्चा न चलाता, दिन रात कलह न करता, तो आज कमलाको भी खोता न पाता। कमला ! कमला !! मैं नहीं जानता था, कि

मेरी ही तरह तू भी व्यभिचारिणी हो जायगी, और मेरी ही तरह तू भी कुलमें कलङ्क लगायगी। हा! अब किस प्रकार मैं तुझे निर्दोष ठहराऊं? क्या उस निर्दोष हीरालालको प्राण दण्ड दिलाऊं, जिसको तूने उस दुराचारी हरकिशोरके लिये अपने कपटप्रेममें फंसाया। (कुछ सोचकर) अब क्या करूं? हीरालालने इस समय पकड़े जानेपर जो पश्चात्ताप किया है; उससे मैं उसे निर्दोष पाता हूं और तुझे ही दोषी पाता हूं। पर क्या करूं रक्त एक ही है, वह मुझे बाध्य करता है :—

कुलोंमें दाग लगता है, अगर सब सच बताता हूं।
उधर व्यभिचार बढ़ता है, जो कमला को बचाता हूं॥
वृथा ही दण्ड पाता है, जो उसको मैं फसाता हूं।
अगर उसको बचाता हूं, बहन अपनी गँवाता हूं॥
नजर खाई ही आती है, जिधर मैं पग बढ़ाता हूं।
जिधर जाता हूं मरता हूं, नहीं मैं चैन पाता हूं॥

अब क्या करूं? हे भगवन्! अब तुम्हीं मेरे रक्षक हो। यह मैं जानता हूं, कि मेरी गति कभी न होगी, फिर भी तुम्हारी ही दयासे बेड़ा पार होगा।

(सहसा कुछ सोचकर) हाँ, जाऊं, पहले कमलाको उस पापीके पंजेसे छुड़ा लाऊं। ऐसा न हो, कि वह दुष्ट उसे लेकर किसी अन्य देशमें भाग जाये और मेरे किये करायेपर पानी फेर जाये।

(शीघ्रतासे चला जाता है।)

दृश्य पांचवां।

[स्थान—हरकिशोरका घर]

(हरकिशोरका प्रवेश)

हर०—(स्वतः) अहा! इस सुखमय संसारमें यदि कोई भाग्यवान् है, तो केवल मैं। वाह वाह! मुझे भी क्या स्त्री-रत्न प्राप्त हुआ है, कि मैं प्रति दिन अपने भाग्यको सराहना किया करता हूं! अहा! कैसी सुन्दरता है!! :—

मोहत मृगनयनी, मनमुग्ध करत पलक मार—
मृदु मुसकान, मणि मेह बरसावत है।
मुखकी मनोहर, वह मूरति अनोखी मानो—
मोहिनि छवि निरखि, निज शशिहू लजावत है॥
मोरन सम डोलत, मदमाती रति मदन माँहि—
मटकत मचलात जात, मीतन मन भावत है॥
मन्द मन्द माधुरी, उचारै बैन मैना सम—
मोहना सों, मिलन, मिथुन आपनो मनावत है॥

मोहना! प्यारी मोहना!! मेरे प्रेमकी पवित्र प्रतिमा! क्या इस रस-मय संसारके किसी भी रसिकने तेरा दर्शन नहीं किया! (ठहरकर) नहीं किया, नहीं किया! यदि एक बार भी किसीने तेरी प्रतिमा देख पायी होती तो आज तू मेरे हाथ न आयी होती। मैं धन्य हूं! जो तूने मुझे स्नेह दान दिया। (सहसा कुछ सोचकर) तो अब कमलासे किस प्रकार पीछा छुड़ाऊं? (सोचकर) ठीक है, न वह पतिकी हत्याकर मेरे सम्मुख आयगी; न मेरे पास स्थान पायगी। (सहसा नेपथ्यकी ओर देखकर) हैं!

यह तो सचमुच ही आ पहुंची !! अब क्या करूं ? (सोचकर)बस साफ ही मुकर जाऊं और इससे पिण्ड छुड़ाऊं ।

(कमला आ जाती है, दोनोंकी आँखे चार होती हैं। कमला मुस्कराती, है, हरकिशोर कुछ त्यौरी चढ़ाकर कमलाकी ओर देखता है)

हर०—(आश्चर्य्यसे) कमला ! क्या तू वह काम कर आयी ?

कम०—(आगे बढ़ती हुई) कर आई हूं, प्यारे ! तुम्हारे प्रेमकी भेंट चढ़ाकर ही तुम्हारे घर आयी हूं । परन्तु यह घटना ऐसी सावधानीसे घटायी है कि यदि सुन पाओगे तो अवश्य ही मेरी चतुरताकी प्रशंसा करोगे।

हर०—(चौंककर) तो क्या ! तूने उस निर्दोष पतिकी हत्या कर डाली ?

कमला—हाँ, मैंने अपने प्रेम-पंथमें पड़े हुए काँटेको दूर कर दिया।

हर०—(आश्चर्य्यसे) कमला ! कमला !! यह तूने क्या किया ? क्या यह पैशाचिक कार्य करते हुए तुझे तनिक भी यह ध्यान न हुआ, कि मैं क्या करती हूं ?

कमला—(आश्चर्य्यसे) हैं ! प्यारे हरकिशोर !! इस समय तुम्हारे भाव मेरे अनुकूल क्यों नहीं दिखायी देते ! क्या मैंने तुम्हारी आज्ञाका पालन नहीं किया ?

हर०—(त्यौरी चढ़ाकर) तो क्या मैंने तुझे पतिका बध करने-के लिये कहा था ? मैंने तो केवल तेरी परीक्षा लेनेके लिये ऐसा कहा था, परन्तु तूने हंसी हंसीमें यह भारी अनर्थ क्यों कर डाला ?

एक दुर्दशाका कारण होगा।

कमला—(चौंककर) तो क्या मुझे सदैवके लिये छोड़ देना चाहते हो ? (हरकिशोरका पल्ला पकड़कर) बोलो ! बोलो !! तुमने किस जिह्वासे यह कहा था कि यदि तू पतिकी हत्याकर मुझे अपने प्रेमकी परीक्षा देगी तो मैं सदा तुझे अपने साथ रखूंगा, क्या वह सब भूल गये ?

हर०—(रुखाईसे आंख निकालकर) कमला ! अब तू मुझे अपनाने और इस पापका भागी बनानेका ध्यान छोड़ दे, मैं तुझ सरीखी स्त्रीसे प्रेम नहीं कर सकता।

कमला—परन्तु, कुछ कारण तो बताओ। :—

क्यों न यह हतभागिनी, कुछ प्रेमका फल पायगी ?
छोड़कर तुमको, कहाँ अब प्रेम करने जायगी ? ॥
और जो चाहे कहो, कमला नहीं घबड़ायगी।
प्रेमसे बञ्चित जो रक्खोगे तो फिर मर जायगी ॥

हर०—(हाथ झटककर)

तुझ सरीखी नार पापिन, प्रेम क्या दिखालायगी।
जिसको तू चाहेगी, उसको यमपुरी पहुंचायगी ॥
जब न तू पतिकी हुई, मेरी तू कब हो जायगी।
प्यारमें कल अन्यके, मेरा भी सर ले जायगी ॥
दूर हो, मेरे हृदयमें तू जगह नहिं पायगी।
जो करेगी इस तरह, वह अन्तमें पछतायगी ॥

कमला—(स्तम्भित होती हुई अत्यन्त पश्चात्तापसे) हरकिशोर, तूने मुझे कहींका न रक्खा :—

ऐसा कुकर्म तूने, मुझे कहके कराया।
बाकी न रहा कुछ, मेरा सर्वस्व लुटाया॥
छलसे मेरा मन ले लिया, कुछ भी न निभाया।
हा! अन्तमें बेड़ा मेरा मझधारमें डुबाया॥

(व्याकुलतासे) नहीं, नहीं, यह मेरा भ्रम है। हरकिशोर! तुम मुझसे केवल हँसी कर रहे हो। परन्तु जो कुछ भी कह रहे हो, मानों एक सर्पसे डँसवा रहे हो। बस, हो लिया, अब क्षमा करो और शीघ्र ही मुझे साथ लेकर किसी ओरको प्रस्थान करो। यदि वह दुष्ट हीरालाल आ जायगा तो सारा काम बिगड़ जायगा।

हर०—(चौंककर) हीरालाल! कौन हीरालाल? क्या तेरे पतिका मित्र?

कमला—हाँ, वही, उसने मेरा तुम्हारा गुप्त प्रेम जान लिया है। वह आज मेरे पीछे पीछे छिपकर आया और सारा भेद जान गया। परन्तु कुशल यह हुई कि वह मुझपर आसक्त हो गया। मैंने उसे तुरन्त अपने कपट-प्रेममे फँसाया, और उसके हाथोंसे यह काम कराया। वह अपना काम समाप्तकर मेरी खोजमें आयगा। यदि निर्दिष्ट स्थानपर मुझे न पायगा तो सीधा यहाँ चला आयगा।

हर०—(दाँतोंमें उँगली दबाकर) कमला! कमला!! यह तो और भी मौतके सन्मुख होनेवाली घटना है। दूर हो शीघ्र ही मेरे सामनेसे दूर हो जा।

कमला०—(आँखें चढ़ाकर) तो क्या सच्चे हृदयसे कहते हो?

हर०—हाँ सत्य कहता हूं, सत्य कहता हूं मैं तेरा संग नहीं कर सकता।

कमला०—(त्यौरी चढ़ाकर) मुझे नहीं चाहते ?

हर०—नहीं, नहीं, नहीं।

कमला—हरकिशोर ! इसका परिणाम बुरा होगा।

हर०—चिन्ता नहीं, परन्तु तू यहाँसे शीघ्र ही चली जा। नहीं तो अभी जाकर तेरी करतूत प्रकट कर दूंगा।

कमला—(क्रोधसे) हाँ, यह बात है ?

हर०—हाँ हाँ, यही बात है।

कमला—(क्रोधसे) तो देख, इस विश्वासघातका फल तुझे इसी समय दिखाती हूं। अभी जाकर पति-हत्याका बदला तुझसे राजदण्ड द्वारा चुकाती हूं।

हर०—(अत्यन्त क्रोधसे, लपककर कमलाका हाथ पकड़ते हुए) ठहर जा पिशाचिनी ! ठहर जा।

(इतना कहते कहते हरकिशोर झटकेसे कमलाको जमीनपर गिराकर उसका गला दबाकर मारना चाहता है, सहसा कालीदास आ जाता है, हरकिशोर अलग हटकर खड़ा होता है, कमला चौंक उठती है और स्तम्भित होकर गर्दन नीची किये बैठ जाती है।)

काली०-(क्रोधसे) ऐ पापी ! व्यभिचारी !! पिशाच !!! क्या तू नहीं जानता, कि असहायोंका सहायक हरघड़ी निर्दोषियोंके साथ रहता है ? चाण्डाल ! मैंने तेरे सारे कुकर्म जान लिये। दुष्ट ! गृहस्थ घरकी ललनाओंको व्यभिचारमें फँसाता

है! उनका धन खाता है !! और भोली-भाली कन्याओंको कपट प्रेममें फँसाकर फिर उनसे ऐसा भयानक अनर्थ कराता है !!! सावधान, सावधान! अब तू अधिक दिन इस पृथ्वीपर नहीं रह सकता। निर्लज्ज! विश्वास-घाती! तुझे पड़ोसी और अपना हिन्दू भाई समझकर इसलिये घरमें नहीं आने देता था कि तू दूसरेकी बहू बेटियोंको पाप कर्ममें फँसाकर उनका धर्म नाश करे?

हर०—(क्रोधसे) बस, कालीदास! अब इन शब्दोंको यहीं बन्द करो। यदि आगे बढ़ाओगे, तो धोखा खाओगे। दूसरे-को कहनेके पहले अपनी बहनको पूछो, कि वह क्यों मेरे पास आयी! जब उसने अपनी लाज आप गँवाई, तो मैंने क्या की बुराई ?

काली०—ओ नरकके जहरीले कीड़े! आँखोंसे देखते हुएको अन्धा बनाता है! नहीं, ऐसा न समझ। मैं तेरी दुष्टतासे अज्ञान नहीं, तुझे इस पापका परिणाम शीघ्रही भोगना पड़ेगा। मैं अभी न्यायालयमें जाता हूं और तुझे इस हत्याकाण्डमें फंसाता हूं।

हीरा०—जा! जा! मैं तेरी इन घुड़कियोंसे डरनेवाला नहीं। न्यायालयमे जाता है तो जा। मैं भी अपनी घात लगाता हूं। (चला जाता है)

काली०—(जाते हुएको तरफ देखता हुआ) ठहर जा, कमीने! ठहर जा, मैं तुझे इस करतूतका स्वाद चखाता हूं। (कमलाको पैरको ठोकर मारकर) कमला! हत्यारी कमला!! तूने यह क्या

कर डाला ? हा ! क्या मेरे माता-पिताका बीज ही खोटा है ? कमला ! कमला !! मैं नहीं जानता था, कि तू व्यभिचारिणी हो जायगी। बता, बता, पापिनी ! यह तुझे किसने सिखाया कि तू अपने संसारको अन्धेरा कर दे ?

कमला—(हाथ जोड़कर) क्षमा, भाई कालीदास ! मुझे क्षमा करो और मेरी लाज बचाओ। मैं अवश्य ही पापिनी हूं, पिशाचिनी हूं, हत्यारिणी हूं, कुलकलङ्किनी हूं, परन्तु इस समय मुझे क्षमा करो। (सर नीचाकर रोती है।)

काली—(क्रोधसे) कमला ! कमला !! तूने अपने मनमें भी कुछ ध्यान न किया, कि मैं क्या करती हूं ? कुलकलङ्किनी ! तू क्षमा करनेके योग्य नहीं। तूने आज वह अनर्थ करना चाहा था, कि जिससे नरकाग्नि भी शीतल हो जाती। यदि मैं समयपर उपस्थित होकर मदनको न बचाता, तेरी करतूत न छिपाता, तो अवश्यही आज न जाने क्या हो जाता।

कमला—क्या उनकी रक्षा हुई ? हे परमात्मा ! तू धन्य है। भाई कालीदास ! तुमने मेरे सोहागकी रक्षा की, तुम धन्य हो। बस अब मेरी लज्जा, मेरा जीवन, मेरा सोहाग, सब कुछ तुम्हारे हाथमें हैं। बचाओ, मुझे लोकनिन्दासे बचाओ। मैंने इस दुष्ट, विश्वासघातीके कपट-प्रेममें फँसकर भयानक हत्याकाण्ड करना चाहा, परन्तु परमात्माने इस समय मेरी लाज तुम्हारे हाथोंसे बचा ली।

काली०—(ठोकर मारकर) ऐ हत्यारी ! तूने क्या समझकर इस प्रेम-रूपी सर्पकी बिलमें हाथ डाला ?

कमला०—मैंने उसी प्रेममें अन्धी होकर यह अत्याचार मचाया जिस प्रेममें तुमने अपना सर्वस्व लुटाया, उस पतिव्रता स्त्रीको खूनके आँसू रुलाया, आज पाँच-पाँच वर्षोंमें एक दिन भी अपने घरमें न बिताया, क्या अब समझमें आया, कि मैंने क्या किया ?

काली०—(पश्चात्तापसे) सत्य कहती हो बहन ! सत्य कहती हो। बस, अब मैं अधिक कहने योग्य नहीं रहा। बचाऊँगा कमला, तुझे बचाऊँगा। यथाशक्ति कुलमें कलङ्क न लगवाऊँगा, परन्तु अब मुझसे अपना सत्य हाल कह जा, एक शब्द भी न छिपा, मैं सारा दोष उस चाण्डाल हीरालाल और इस पापी हरकिशोरपर लगाऊँगा। तेरी लाज बचाऊँगा।

कमला—बताऊँगी समयपर सब कुछ बताऊँगी, तुमसे कुछ नहीं छिपाऊँगी। परन्तु भ्राता ! मेरी रक्षा करो !

काली०—चलो, शीघ्र चलो, तुम्हें पतिके घरमें छोड़कर इसी समय न्यायालयमें जाऊँगा और यथाशक्ति तुझे बचाऊँगा, परन्तु कमला तूने ऐसे महापाप किये हैं, कि जिनका प्रायश्चित्त ही नहीं। याद रख, इस काण्डमें यदि मैं तुझे निर्दोष ठहराकर बचाऊँगा भी, तो भी मनसा-वाचा-कर्मणा किये पापका तुझे एकबार ईश्वरीय दण्ड अवश्य ही भोगना पड़ेगा।

कमला—(पश्चात्तापसे) सत्य है, मेरा तो अब नरकमें भी ठिकाना न होगा और मुझे अवश्य ही अपने पापोंका प्रतिफल पाना होगा। फिर भी इस समय मेरा उद्धार करनेवाले तुम्हीं हो।

कालो०—अच्छा मेरे साथ आ।

(दोनोंका प्रस्थान)

दृश्य छठां।

[स्थान—एक रास्ता]

(धर्म्मदासका हाथमें माला लिये प्रवेश करना)

धर्म०—हर हर हर हर! लोग कहते हैं, कि बस माला फेरना ही उत्तम विधान है; पर मेरे विचारमें तो सुन्दरताहीमें सारे संसारका ज्ञान है। हर हर हर! क्या करूँ, जबसे अपने मित्र किशोरीलालकी पुत्र-वधू मनोरमाको देखा है, तबसे सारा ही ज्ञान-ध्यान कलियुगी बाजार और व्यभिचारके मुहल्लोंके रास्तोंसे होता हुआ आकर, प्रेमके वेशमें मेरी इस आत्मामें छिप गया है। अब धर्म्मकी डपट, मालाके डंडे और बगला भक्तिकी युक्तिसे, प्रेमके दरबारमें नालिश करनेपर भी नहीं निकलता। अब तो निराश होकर केवल उसी मनोहर मूर्त्तिके नामकी माला फेरा करता हूं। हर हर हर हर! यद्यपि इस माला और लम्बे टीकेके प्रतापसे बिना रोक टोक, उसका दर्शन कर आता हूं तथापि चैन नहीं पाता हूं। क्या करूँ? वह ससुरकी मृत्यु और पतिकी दुर्दशा होनेपर भी हाथमें नहीं आती है। अब कौनसी युक्ति काममें लाऊँ? किस तरह उसे अपनाऊँ? (सोचना)

दिलखुश—(आ कर) कौन धर्मदास!

धर्म्म०—(स्वतः) बस, सत्यानाश ! (माला फेरने लग जाना)

दिल—कहिये, खड़े-खड़े क्या सोच रहे हैं ?

धर्म्म०—(व्यङ्गभावसे) हर हर हर हर ! (बैठ जाता है ।)

दिल०—महाराज ! इस हर हरने तो घर घरमें प्रवेश किया है; परन्तु यह तो बताइये, कि कहीं दाल भी गली कि नहीं ?

धर्म्म०—(चौंककर) हर हर हर हर ! यह क्या कहता है दिलखुश ?

दिल०—आपकी जीवन कथा, और क्या ?:—

घर-घरमें पड़े रहते हो मालाके सहारे ।
बगला ज्यों खड़ा रहता है, गङ्गाके किनारे ॥
मछली न फसी एक भी, पञ्जे में तुम्हारे ।
ऐसा न हो लालच कहीं, उलटी तुम्हें मारे ॥

धर्म्म०–(स्वतः) क्या यह मेरी धूर्तताको जानता है ? बस, अब इसे दो चार उल्टी सीधी सुनाकर धत्ता बताऊँ। (प्रगट) दिलखुश ! तू क्यों वृथा मेरे पीछे पड़ता है ? (डपटकर) मूर्ख ! सिरपर चढ़ता है। (क्रोध दिखाता हुआ) हर हर हर हर ! (क्रोधभरी दृष्टिसे उसे देखते रहना)

दिल०—(स्वतः) यह बगलाभगत इस तरह नहीं मानेगा। (प्रकट) तो महाराज ! आप क्यों रुष्ट होते हैं ? लीजिये मैं चला जाता हूं। (जाता हुआ स्वतः) और तुम्हें उल्लू बनानेका मसाला लेकर आता हूं। (जाता है।)

धर्म्म०– (हँसकर) हर हर हर हर ! देखा एक ही झाँसेमें भागा। हर हर हर हर !

दुनियाँमें काम ढङ्गसे चलता है आजकल।
सीधेसे कोई काम निकलता न आजकल॥
जप तप न कभी करनेसे फलता है आजकल।
धर्म्मों तो बड़े तेलके तलता है आजकल॥

(सामने देखकर) हर हर हर हर! यह कौन स्त्री सामनेसे अठिलाती हुई आ रही है?

(हर हर हर हर करता रहता है। सामनेसे एक स्त्री आती है और धर्म्मदासको देखकर एक तरफ हटकर खड़ी हो जाती है। धर्म्मदास हर हर करता हुआ उसके पास सरकता जाता है।)

स्त्री—क्यों जी मेरा रास्ता क्यों रोकते हो?

धर्म्म०—हर हर हर हर! अ-अ-अ-आपका (सर खुजलाते हुए) द-द-द-दर्शन करनेको। हर हर हर हर! (चारों तरफ देखता हुआ स्वतः) स्त्री तो सुन्दर जान पड़ती है।

स्त्री—(नखरेसे) अजी हटो, देखनेमें तो बड़े भक्त मालूम होते हो पर कर्म्म यह कि राह चलती हुई स्त्रियोंके पीछे पड़ते हो? शर्म्म करो!

धर्म्म०—जिसने की शर्म्म, उसके फूटे कर्म्म और यह तो आजकलका साधारण स्वाँग है। (स्वतः) चाल-ढालसे तो कलियुगी जान पड़ती है। परन्तु ऐसा न हो, किसी बड़े घरकी स्त्री हो और आजकलकी नयी चलनके अनुसार कहीं दर्शन परसनको चली हो। (सोचकर) अजी ज़ब बाज़ारमें अकेली फिरती है तो डर काहेका? एक बार मुख तो देख लूँ (प्रकट) हर हर हर हर! सुन्दरी! हम तुम्हारी धमकियोंमें आनेवाला नहीं। अब

क्यों इतने नखरे दिखाती हो, बातोंमें लड़ाती हो। ज़रा घूँघट तो खोलो।

स्त्री—मैंने मुँह दिखाया और आप मुग्ध हो गये, तब?

धर्म्म०—(उछलकर) हर हर हर हर! तो बस मेरे प्रेम-सागरमें गोते लगाना, चूल्हेमें गया दूसरा ठिकाना और कहीं न आना जाना। हर हर हर हर!

स्त्री—तुम तो बड़े सयाने हो?

धर्म्म०—हर हर हर हर! तो फिर दर्शन कराओ, समय न गँवाओ।

स्त्री—पहले अपनी मालाको धता बताओ।

धर्म्म०—(मालाको जोरसे जमीनपर फेंककर) यह लो और बताओ?

स्त्री—अच्छा, अब मेरे पैर दबाओ।

धर्म्म०—हैं! पैर दबाओ? (स्वतः) न जाने किस जातिकी हो, मैं ब्राह्मण होकर पैर दबाऊँ?

स्त्री—तो रास्ता छोड़ो। हट जाओ (जाना चाहती है, धर्मदास रोकता है।)

धर्म्म०—अच्छा दबाता हूं, दबाता हूं (पैर दबाना)

स्त्री—अब यह बताओ, कि तुमने कितनी स्त्रियोंसे ऐसा बर्ताव किया है?

धर्म्म०—यह क्यों बताऊँ?

स्त्री–तो हटो मैं जाऊँ। (जाना चाहती है। धर्म्मदास रोकता है।)

धर्म्म—बताता हूं, बताता हूं। देखो मैं तुम्हें सच सच

बताता हूं। सुनो, मैंने आजतक कई स्त्रियोंपर अपनी चतुराई चलायी, पर कोई भी हाथमे न आयी।

स्त्री—(डपटकर) झूठ बोलते हो! तुमने मेरी पड़ोसिन मनोरमाको अपने जालमें नहीं फसाया? उसपर दाँत नहीं लगाया?

धर्म्म०—(स्वतः) क्या यह मनोरमाकी पड़ोसिन है? (प्रकट) हाँ हाँ, मैं वहाँ गया था, पर मेरा मन्त्र एक भी काम न आया! मैं धर्म्मसे कहता हूं प्यारी! अच्छा अब अधिक न सताओ, आओ गलेसे लग जाओ।

स्त्री—अच्छा तो आओ (साड़ी उतारकर दिलखुश बन जाता है।)

धर्म्म०—(दौड़कर माला उठाकर फेरने लग जाता है।) (स्वतः) अररर! इसने तो सारा भेद जान लिया। बस, अब इसे अपने साथ मिला लूँ, नहीं तो मेरा सारा खेल बिगड़ जायगा (प्रकट) भाई दिलखुश! तू तो मेरा भी गुरु निकला।

दिलखुश–क्यों अब कहाँ गई तुम्हारी गुप्ती माला? देखा—

मुझ पै न चली एक भी तुमने तो चाल की।
रखते हैं नजर ताड़ने-वाले पाताल की॥

पंडितजी महाराज! मेरे ही स्वामीके घरमें जाकर सेंध लगाओ, और दिन रात पास रहनेवाले इस नौकरको बातों हीमें उड़ाओ?

धर्म्म०—भाई क्षमा करो। मैं जानता था कि तुम भी उस दूसरे नौकर जीवनकी तरह बिगड़कर मुझे घरसे निकलवाओगे।

दिल०—नहीं नहीं, मैं जीवन जैसा नहीं हूं। अपनेको तो पैसा झँसनेसे काम है।

धर्म्म०—तो फिर मेरा कहा मान लो। (थैली दिखाकर) यह पचास रुपये इनाम।

दिल०—तो बताओ क्या करना होगा? शीघ्र बताओ!

धर्म्म०—तुमने तो सब जान लिया है! बस मनोरमाको मुझसे मिलाओ।

दिल०-और सब करो, पर मनोरमाका ध्यान मनसे हटाओ।

धर्म्म०—क्यों?

दिल०—वह पतिव्रता है, हाथमे न आयगी! दूसरे, जबतक उसके पास जीवन है, तबतक मेरी युक्ति काम न आयगी।

धर्म्म०—यदि तुम चाहो तो सब हो सकता है; क्योंकि तुम भी वहाँ नौकरी कर चुके हो। बस उसको ऐसी चालमें फसाओ कि मेरा काम बन जाये और यह थैली तुम्हारे हाथ आये।

दिल०—(सोचकर) अच्छा तो १००) रुपये लूँगा?

धर्म्म०—(थैली देकर) यह पचास तो लो और पचास काम होनेपर दूंगा।

दिल०—(थैली लेकर) तो आओ, मौका पाकर उसे कही जङ्गलमें ले चलें। वहाँ चलकर जब धमकायी जायगी, तब हाथमें आयगी। क्यों ठीक है न?

धर्म्म०—ठीक है, तो चलो यही युक्ति अपना काम बनायगी। (जाते हुए) हर हर हर हर!

(दोनोंका जाना)

दृश्य सातवां ।

[स्थान—घरका दालान]

(जीवन नौकरका प्रवेश)

जीवन—(स्वतः) हे भगवान ! क्या धर्मी, सत्संगी परोपकारी, सत्यवक्ता और न्यायपरायणको दुखाना ; पापी, पाखण्डी; दुराचारी, व्यभिचारी, हत्यारे इत्यादिका जीवन सुखसे बिताना, यही तुम्हारा न्याय है ? नहीं, दयामय प्रभु दया करो । मेरे स्वामीके परिवारपर दया करो ।

(मनोरमाका प्रवेश)

मनो०—जीवन ! क्या विचार कर रहे हो ?

जीवन—(हाथ जोड़कर) स्वामिनि ! मैं केवल आप ही लोगोंके कल्याणार्थ ईश्वरसे प्रार्थना कर रहा हूं ।

मनो०—जीवन ! स्वामि-भक्त जीवन !! तुम सचमुच ही इस घोर-संकटके समय मेरे लिये जीवन ही हो । यदि तुमने मुझ आजतक धैर्य दे देकर न सँभाला होता; तो इस विपत्तिके समय मैंने आत्महत्या कर अवश्य ही अपना प्राण दे डाला होता ।

जीवन - फिर भी धैर्य रक्खो, स्वामिनि ! धैर्य रक्खो, एक धैर्य ही सब बिगड़ी हुई बातोंको बना देता है । इसमें मैंने क्या किया ? मैं तो अबतक आपलोगोकी सेवा भी पूर्ण रूपस नही कर सका । फिर मेरी बड़ाई क्यों करती हो ?

मनो०—जीवन ! क्या मुझे सदैव यही सब विपत्तियाँ झेलनी पड़ेंगी ? क्या उन्हें एक बार भी उस राक्षसीके पंजेसे छुड़ाकर घरमें न लाओगे ?

जीवन—माता! क्या तुम यह समझती हो, कि मैंने कालीदासजीके लिये अबतक कोई उद्योग नहीं किया? नहीं; नहीं, मैं कई बार उनसे मिलनेके लिये उस वेश्याके द्वारपर जाकर दिन दिन भर बैठा रहा, परन्तु उनके संग रहनेवाले दुष्टोंने मुझे उनके पास फटकनेतक नहीं दिया, फिर भी मैं नित्य ही एक बार उनसे मिलनेकी चेष्टा करता हूं।

मनो०—तो क्या इसी चेष्टामें ही मेरे प्राण, जायंगे? वह एक बार भी मुझे दर्शन देनेके लिये घर न आयंगे?

जीवन—अवश्य आयंगे, अवश्य आयंगे, परन्तु जिस दिन ठोकर खायंगे! यह व्यभिचारका नशा मनुष्यको उसी दिन किये कुकर्मोंपर पश्चात्ताप कराता है, जिस दिन वह ठोकर खाता है। आप याद रखिये कि आपको पूर्वकी भाँति ही सब सुख प्राप्त होंगे।

मनो०—जीवन! यह तुम क्या कह रहे हो? भला अब मुझे सुख प्राप्त होंगे! नहीं, नहीं, मुझे जन्मभर रोना होगा, क्या गयी हुई वस्तु भी कभी हाथ आ सकती है?

जीवन—ऐसा न कहिये :—

रघुनाथ असाध्यको साध्य करें—
नहीं होवनका सो करें क्षणमें।
धनवानको चाहें दरिद्र करें—
वो दरिद्रको पूर करें धनमें॥
जिन लेख लिलाटके टार दिये—
अरु प्राण दिये मुरदे तनमें।

उनकी लीला नहीं जात लखी—
वो अवश्य करें जो धरें मनमें ॥

मनो०—परन्तु तुम्हारे कथनसे तो यही सिद्ध होता है, कि हमारे घरकी जैसी अवस्था पहले थी, फिर वैसी ही हो जायगी।

जीवन—इसमें क्या सन्देह है?

मनो०—जीवन! तुम्हारी बातें मुझे सन्देहमें डाल रही हैं। क्योंकि तुम सदा यही कहा करते हो, कि जिन सुखोंकी तुम आशा करती हो वह सब तुम्हें प्राप्त होंगे। भला तुम ही बताओ कि मुझे सुख किस प्रकार प्राप्त होंगे?

मर गये अपने बिगाने, मा, बहन, भाई नहीं।
कर्ममें पति-दरस भी, अपने लिखा लाई नहीं॥
हा! बसाते ही उजाड़ा, घर मेरा व्यभिचारने।
रात दिन रोती हूं, और पास एक पाई नहीं॥

जीवन—तो कुछ चिन्ता नहीं:—

धर्म्म है दुखका दुखाना, धीर तज रोना नहीं।
बिपतमें पड़कर कभी रोनेसे कुछ होना नहीं॥
मर गये लाखों, मरेंगे हम भी अब कुछ रोज़में।
पर कभी विश्वास, धीरज, धर्म सत् खोना नहीं॥
अर्थ ही सब कुछ अनर्थोंका यहाँ कारण हुआ।
फिर भी धनके वास्ते, खाना नहीं सोना नहीं॥
दृढ़ रहो सत्पर, न किञ्चित् मन करो अपना मलिन।
वह घड़ी आयेगी जिसको कहती हो होना नहीं॥

मनो०—जीवन! तुम इस दासत्वके वेशमें छिपे हुए कोई

महात्मा हो! तुम्हें दास कहते हुए लज्जा आती है। तुम मेरे आत्मीय हो, बन्धु हो, दासत्वका महत्व जाननेवाले एक योग्य पुरुष हो। यदि तुम किसी उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए होते, तो अवश्य ही तुम एक महापुरुष कहाते। बताओ, बताओ, जीवन! मुझे एक बार तो यह बताओ कि तुम पूर्वकी भाँति मेरा खर्च किस तरह चलाते हो! मुझसे तो एक पैसा वेतन भी नहीं पाते हो! तो फिर यह पैसे कहाँसे लाते हो?

जीवन—आप हीके दिये हुए पैसेको आपके अर्थ लगाता हूं परन्तु क्या करूँ? इतनेपर भी आपको दुःखी देखता हूं तो मर जाता हूं और कहाँतक कहूँ?

मनो०—अच्छा, तुम्हारे कर्म्मका फल तुम्हें परमात्मा देगा। मैं तुम्हारा उद्देश्य समझनेकी योग्यता नहीं रखती हूं; परन्तु तुम्हें आज सच्चे हृदयसे यही आशीर्वाद देती हूँ कि तुम सदा फूलो फलो।

जीवन--बस मिल गयी! आज मुझे आपकी चरण-सेवाकी मजदूरी मिल गयी! स्वामिनि, मुझे धन दौलत नहीं, अन्न-दाताओंका आशीर्वाद ही चाहिये। आप किसी प्रकारका सोच न करिये, धैर्य धरिये, मैं शीघ्र ही आपको वह घड़ी दिखा-नेकी चेष्टा करूँगा, जिसके लिये आप निराश हो रही हैं।

मेरा जो धर्म्म है, उससे नहीं मैं मुँह फिराऊँगा।
करूँगा कर्म्म सेवकका, तभी सेवक कहाऊँगा॥
पली है देह यह मेरी, सदा आप हीके टुकड़ोंसे।
तो क्यों नहीं रक्त अपना, आपके कारण बहाऊँगा॥

नहीं कुछ भी किया मैंने, न सेवा ही हुई पूरी।
यही हूँ सोचता स्वामिन् कि कब मैं काम आऊँगा॥
दुखोंमें आप लोगोंके, नहीं कुछ बन पड़ा मुझसे।
सुखी सबको जो देखूंगा, तभी मैं चैन पाऊँगा॥

मनो०—सुखी रहो, जीवन! तुम सुखी रहो। मैं तुम्हारे उत्तम विचारोंको ही ग्रहणकर अपना समय बिताऊँगी और परमात्माके ही चरणोंमें ध्यान लगाऊँगी।

जीवन—तो फिर संकटकी अवधि समाप्त ही समझिये!

मनो०—(चौंककर) ओह! आज पूजनमें बिलम्ब हो गया। जीवन, जाओ; पुष्प ले आओ।

जीवन—जो आज्ञा (जाता है।)

मनो०—(जीवनकी ओर देखती हुई स्वतः) हे प्रभो! जिस प्रकार इस दासने मेरी रक्षा की है। उसी प्रकार तुम इसकी रक्षा करना।

(धर्मदास तथा दिलखुश छिपकर एक साथ आते हैं और आपसमें मनोरमाके उठा ले जानेके सम्बन्धमें इशारेसे बातें करते हैं और तय्यार होते हैं। मनोरमा ऊपरकी ओर ध्यान किये अपने मनमें ईश्वरसे प्रार्थना करती है। इतनेमें धर्मदास और दिलखुश लपककर मनोरमाकी तरफ छिपते हुए बढ़ते हैं। एकाएक दिलखुश मनोरमाको रस्सीसे बाँधता है धर्मदास मनोरमाका मुँह कपड़ेसे बन्द करता है। मनोरमा घबड़ाती है, दिलखुश जेबसे एक शीशी जिसमें लाल रंगका अर्क भरा है निकालकर फर्शपर छिड़क देता

है और धर्मदासको कुछ इशारा
करता है, धर्मदास और दिलखुश
दोनों मिलकर मनोरमाको
उठा ले जाते हैं।)

दृश्य आठवां।

[स्थान—एक रास्ता]

(कालीदासका प्रवेश)

काली०—(स्वतः) हा! मैं कहींका न रहा। हा! अब किस प्रकार उस सच्चे पातिव्रत-धर्मकी मूर्त्ति मनोरमाके सम्मुख जाऊँ? किस प्रकार उससे अपने अपराध क्षमा कराऊँ? क्या वह अपने हृदयमें मुझे स्थान देगी? (सोचकर) देगी; वह अवश्य ही मुझ पापीको भी स्वीकार कर लेगीः—

साथ छोड़ेगी नहीं, वो पतिव्रता जो नार है।
नीच भी स्वामी मिले; उसके लिये करतार है॥
एक दिन माना नहीं, उसके भले उपदेशको।
कुछ न सूझी पर, मुझे धिक्कार है! धिक्कार है!!

हा! व्यभिचारी कालीदास! यह तूने क्या किया? हा! तूने एक दिन भी यह विचार न किया कि तू क्या कर रहा है? कालीदास! कालीदास!! अब तुझे कोई क्षमा न करेगा, तू अपने घोर पापोंका प्रतिदान पानेके साथ ही साथ बुरी मौत मरेगा। त संसारमें कहीं पैर रखनेके लिये भी स्थान न पायगा।

पिताकी दुःखी आत्मासे निकला हुआ, शाप कभी खाली न जायगा। (पृथ्वीकी ओर देखता हुआ) उठा ले; माता बसुन्धरे! मुझे शीघ्र ही अपनी गोदमें सुला ले, जिससे मुझ अधमकी छाया भी किसीपर न जा पड़े।

जगह दो नीचको जननी! जो मैं जल्दी समा जाऊँ।
किये व्यभिचार अपनेका, यहीं प्रतिदान मैं पाऊँ॥
नहीं है योग्य जीनेके, अधम यह दुष्ट हत्यारा।
नहीं विश्वास है मुझको, नरकमें भी जगह मैं पाऊँ॥

परन्तु अब क्या उपाय करूँ? हे भगवन! अब इस पापीका बेड़ा पार करनेवाले तुम्हीं हो। मैं जानता हूँ कि मेरी रक्षा न करोगे, पर फिर भी रक्षक तुम्हीं हो प्रभो! तुम्हीं हो।

(मनोरञ्जनका चार सिपाही, एक वकील तथा एक राजकर्म्मचारी सहित प्रवेश करना। कालीदासका चौंककर देखना।)

मनो०—(स्वतः, कालीदासको देखकर) लो बिना परिश्रम ही हाथ आ गया। (प्रकटमें, वकीलसे) वकील साहब! यही है वह कालीदास; जिसको हम ढूंढ़ रहे हैं; इसे गिरफ्तार करो।

(कालीदास चौंक उठता है।)

वकील—(आगे बढ़कर) क्या तुम्हारा ही नाम कालीदास है?

काली०—(आश्चर्यसे) हाँ, परन्तु आप कौन हैं?

वकील—हम वकील हैं और (मनोरञ्जनको दिखाकर) अपने इस मुअक्किलकी तरफसे तुम्हारे नाम वारण्ट लेकर तुमको गिरफ्तार करने आये हैं। बोलो, तुम इक्कीस हजार रुपये बाबत

हैण्ड-नोटके देना चाहते हो या तुमको गिरफ्तार किया जाये ?

कालो०—(मनोरञ्जनकी ओर क्रोधसे देखकर) ऐ मनुष्यके वेशमें राक्षस ! क्या मेरा सब कुछ लूटकर भी तृप्त नहीं हुआ ? जो अब धोखा देकर लिखाये हुए रुक्केकी झूठी रकम लेने आया है। अरे दुष्ट ! तू तो मेरा मित्र था; हितू था ! अब वह तेरा प्रेम और मित्रता कहाँ गयी ? बोल, बोल, निर्लज्ज ! विश्वासघाती !! कमीने !!! क्या यही तेरा धर्म है ?

मनो०—(क्रोधसे) बस, बस, ज़बान बन्द कर नहीं तो अच्छा न होगा !

काली०—अरे कलयुगका अवतार ! अब अच्छा और बुरा क्या देख रहा है ? तूने मेरे पास छोड़ा ही क्या जो अब माँगने आया है ? ऐ नरपिशाच ! तूने ही मेरा सर्वनाश किया :—

छलसे अज्ञानको, वेश्यासे मिलाया तूने।
चाल चल चलके मुझे, लूटके खाया तूने ॥
मित्र दो दिनको बना, कुछ न निभाया तूने।
मित्र सच्चा जो मिला, उससे छुड़ाया तूने ॥
धर्म धन हरके मेरा; नाश कराया तूने।
अन्त बेड़ा मेरा मझधार, डुबाया तूने ॥
साथ फिर भी नहीं छोड़ा, खूब रुलाया तूने।
पास कौड़ी न रही, फिर भी सताया तूने ॥

मनो०—(सिपाहियोंसे) अजी क्या देखते हो ? बाँधो इस बेईमानको।

(सिपाही वकीलके इशारेसे कालीदासको हथकड़ी
पहनाते हैं, कालीदास रोनी सूरत बनाकर
मनोरंजनकी ओर देखता है ।)

कालो०—मनोरञ्जन ! मनोरञ्जन ! क्या तुझे परमात्माका भी डर नहीं ? छोड़ दे दुष्ट ! इस विपत्तिके समय तो मुझे छोड़ दे । क्या मैंने तेरे साथ ऐसा ही व्यवहार किया था ? अरे निर्लज्ज ! मैंने तो तुझे अपना सर्वस्व दे दिया था ।

मनो०—(आंखें निकालकर) बस कालीदास ! बहुत बातें न बना, या तो रुपया चुका या कारागारमें जा ।

काली०—छोड़ दे मुझे छोड़ दे ।

मनो०—नहीं, ऐसा कदापि नहीं होगा ।

काली०—नहीं होगा ?

मनो०—नहीं होगा ।

काली०—अच्छा तो चल, मैं न्यायालयमें जाकर न्यायाधीशसे अपना न्याय कराऊँगा, यदि मैं सच्चा और निर्दोष हूं तो अपने बदले तुझे दण्ड दिलाऊँगा ।

मनो० –(लापरवाहीसे) देखा जायगा। (सिपाही तथा वकीलसे) चलो, इसे शीघ्र ले चलो ।

(दुर्गादासका वेगसे प्रवेश करना, कालीदासका
देखकर रुक जाना । मनोरञ्जनका एक
तरफ हटकर खड़े हो जाना ।)

दुर्गा०—(आते ही) ठहरो, ठहरो, इस निर्दोषको कहाँ ले जाते हो ?

मनो०—(स्वतः) हाय हाय ! यह दुष्ट कहाँसे आ पहुंचा ?

वकील०—(कालीदासकी तरफ दिखाकर) यह आसामी मेरे (मनोरञ्जनको देखकर) इस मुअक्किलका देनदार है। इसलिये वारण्टमें गिरफ्तार है।

दुर्गा०—(मनोरञ्जनकी ओर घूरता हुआ) धिक्कार है दुष्ट तुझपर धिक्कार है !

मनो०—(डपटकर) बस बस, ज़बान सम्हाल, नहीं तो अच्छा न होगा।

दुर्गा०—(क्रोधसे, मनोरञ्जनको) ठहर जा, ठहर जा, शीघ्रही तुझे तेरी करतूतका मजा चखाऊँगा।

काली०—मित्र दुर्गादास ! इस समय तुम्हारे सिवा मेरा रक्षक कोई नहीं। बचाओ, मुझे इस नरपिशाचसे बचाओ।

दुर्गा०—घबड़ाओ मत, घबड़ाओ मत ! (वकील) साहब ! आप इसे छोड़ दीजिये, क्योंकि यह निर्दोष है।

वकील०—नहीं नहीं, मैं बिना रुपये पाये इसे नहीं छोड़ सकता। यदि तुम इसे छुड़ाना चाहते हो तो रुपये लाओ।

काली०—मित्र दुर्गादास ! इस दुराचारीने मुझे धोखा देकर एक रुक्का लिखाया है। मैंने एक पैसा भी नहीं पाया है।

दुर्गा०—कालीदास ! मैं यह वृत्तान्त अपने एक गुप्तचरसे सुनकर ही तुम्हारी खोजमे आया हूं। चिन्ता न करो, (मनोरंजनकी तरफ दिखाकर) मैं इस नीचसे पूरा पूरा बदला लूँगा। वकील साहब ! मैं इस एक बड़े घरानेके लड़केको न्यायालयमें खड़ा देखना नहीं चाहता। इस कारण (जेबसे नोटोंका बण्डल निकाल

कर देते हुए) यह लीजिये, इक्कीस हजार रुपये और इसे छोड़ दीजिये। मैं अभी जाकर यह रुपये न्यायालयसे लौटा लाता हूं और आपके मुअक्किलको धोखा देकर यह रुपया लेनेका मज़ा चखाता हूं।

वकील—(रुपये लेकर) अच्छा तो आप न्यायालयमें जाइये। (सिपाहियोंसे) छोड़ दो, इसे छोड़ दो।

(सिपाही कालीदासको हथकड़ी खोल देते हैं। कालीदास लपककर दुर्गादाससे गले मिलता है।)

मनो०—(स्वतः) चलो जी, माल तो हाथ आया।

काली०—(मनोरंजनसे) देख, दुष्ट! इधर देख!

मित्र सच्चा देख ले और देख क्या हित प्यार है।
मित्र तू भी है तुझे धिक्कार सौ सौ बार है॥
ऐसे मित्रोंसे बँधा ही इस समय संसार है।
देख ले यह मित्र है, तू नरकका अवतार है॥

मनो०—(वकीलसे) चलिये, चलिये। इनकी बातें क्या सुनते हैं? ये दोनों ही पाजी हैं।

(दुर्गादास और कालीदास दोनों उन सबकी तरफ देखकर दाँत पीसते हैं। मनोरंजन अपने साथ आनेवालोंको ले जाता है।)

काली०—मित्र दुर्गादास! मुझे क्षमा करो, मैं यदि तुम्हारा और मित्रत्वका आदर्श जानता तो तुम्हें कभी भी दूर न करता। हा! उस समय मैं व्यभिचारके नशेमें ऐसा अन्धा हो गया था, कि मुझे भविष्यका ज्ञान न था, मेरे अपमानयुक्त कहे हुए शब्दोंको क्षमा करो।

दुर्गा०—भाई कालीदास ! मुझे लज्जित न करो। तुमने मेरा क्या बिगाड़ा है जो मुझसे क्षमा माँगते हो ? छोड़ो, इन बीती हुई बातोंका ध्यान छोड़ो। उस समय तुम अपने आपेमें नहीं थे इसलिये मैं तुम्हें दोष नहीं दे सकता ! इसमें तुम्हारा नहीं बल्कि तुम्हारे भाग्यका दोष है। परन्तु—कुछ चिन्ता नहीं :—

जब पूर्व जन्मके पाप, उदय होते हैं।
सहसा अपना मत, आपही नर खोते हैं॥
कर्मनकी गतिसे, नीचहृदय होते हैं।
सब किये पूर्वके पुण्य भी क्षय होते हैं॥
धन, बल, गुण, सुख, तब सब ही तय होते हैं।
दुःख ही दुःख उनको समय समय होते हैं॥

काली०—धन्य हो, धन्य हो। हा ! मैंने एक दिन भी उपदेशोंपर ध्यान नहीं दिया।

दुर्गा०—तो क्या हुआ, अब भी तुम उसी अवस्थाको प्राप्त हो सकते हो।

काली०—नहीं नहीं, यह कुकर्मी अब किसी योग्य नहीं रहा। मित्र ! मैंने ऐसे घोर अत्याचार किये हैं, कि जिनके फलसे अब मैं छुटकारा नहीं पा सकता। मुझे मेरे पापोंका परिणाम भोगना ही होगा।

दुर्गा०—नहीं, नहीं, ऐसा न कहो, यदि तुम अब भी अपने आपको सँभालोगे तो अवश्य ही सर्वसुख भोग करोगे। आओ, मेरे साथ आओ और घरमें चलकर उस पतिव्रता स्त्रीकी आत्माको शान्त करो।

मनो०—यही कि तुम दोनों मनुष्यके वेशमें राक्षस हो:—

दिल०—मान जा नारी हठीली ! क्रोध मुझपर छा गया ।

देख ले पछतायगी, अब काल तेरा आ गया ॥

मनो०—काल मेरा आ गया, तू किस लिये घबड़ा गया ?

करके तू अपनी देख ले हरि टेर मेरी पा गया ॥

हे भगवान् ! मेरा सतीत्व तेरे हाथ है; अनाथोंका तु ही नाथ है ।

(सहसा बादल गरजता है, बिजली चमकती है, धर्म्मदास और दिलखुश कुछ भयभीत होते हैं । इतनेमें जोरसे आवाज होती है, एकाएक धर्म्मदासपर बिजली गिरती है और वह मर जाता है । दिलखुश अत्यन्त भयभीत होता है । इतनेमें एक सर्प उसको डॅसता है और वह भी मर जाता है)

मनो०—तुम्हीं हो; दीनानाथ ! निर्दोषोंकी सुधि लेनेवाले तुम्हीं हो । उपकार किया प्रभो ! तुमने एक अबलाका बेड़ा पार किया !

(मनोरमा ऊपरकी ओर ध्यान लगाये ईश्वरसे प्रार्थना करती हुई खड़ी रहती है ।)

दो मुझे दुःख न होगा। हा! मैंने तुम्हारा कहा भी न माना। तुम्हारे मुँहसे निकले हुए उपदेशोंको तुच्छ जाना। जीवन! मैंने तुम्हारी नमकहलालीको नहीं पहचाना। हा! :—

तज कर्म, कुकर्म ही नित्य किये—
दिन एक न ध्यान किया इनका।
उन दुष्टनका उपदेश लिया—
था त्याग किया सबने जिनका॥
जिनके पति नित्य अनेक बने—
सत् मान लिया था हिया तिनका।
धन धर्म्म गया; निज नार छुटी—
हा! नीच विचार सुना किनका?॥

जीवन—परन्तु स्वामी! अब तो वह नारी भी आपसे दूर हो चुकी और जो कुछ धन सम्पत्ति थी वह आपके झूठे प्रेमियोंकी गोदमें सो चुकी। अब तो केवल आप ही पश्चात्ताप, करनेके लिये बाकी रह गये हैं।

दुर्गा०—(आश्चर्य्यसे) हैं! यह क्या घटना है जीवन!

जीवन—मेरी अनुपस्थितिमें मालकिन एकाएक लापता हो गयीं।

काली०—(घबड़ाते हुए) आह! मनोरमा! मनोरमा! (जमीनपर गिरकर बेहोश हो जाता है।)

(कालीदासका गिरना, दुर्गादास और जीवनका उसे शीघ्र उठाकर सीधा बैठाना। दुर्गादासका अपने रूमालसे कालीदासके मुँहपर हवा करना। जीवनका पैर दबाना।)

दुर्गा०—हे भगवान ! इस अभागेपर दया करो। (कालीदासका मुँह पोछता हुआ) कालीदास ! (ठहरकर) कालीदास !! (हवा करना)

(कालीदासका सचेत होकर उठना)

काली०—(सहसा चौंककर) कहाँ है ? वह देवी कहाँ है ? वह लक्ष्मी कहाँ है ? क्या मैं उसे एक बार भी न देख सकूँगा ? हा ! इन सब घटनाओंका मूल कारण हूं मैं।

दुर्गा०—कालीदास ! अब वृथा पश्चात्तापमें समय व्यतीत न करो, चलो चलो मनोरमाका पता लगाओ। यह समय ठहरनेका नहीं है, उपाय करनेका है। यह सब दुःख तो तबतक अवश्य सहने पड़ेंगे जबतक तुम्हारी ग्रहदशा है।

यही दशा उनकी देखी जिनको विपत्तिने घेरा है।
जिनके दिन सुखसे कटते उनपर भी इसका फेरा है॥
बीते दिन जब संकटके फिर सुखका लाभ घनेरा है।
खुली आँख जिस पल अपनी बस जानो वही सवेरा है॥

जीवन०—स्वामी ! चलिये इस समय शोकको दूर हटाइये, स्वामिनीका पता लगाइये।

काली०—हाँ हाँ चलो, किसी तरह मुझे मनोरमाका दर्शन कराओ, नहीं तो मेरे लिये एक चिता बनाओ।

(सबका प्रस्थान करना)

दृश्य नवां।

[स्थान—एक जंगलका मार्ग, नदीका किनारा।]

(धर्मदास तथा दिलखुश दबे पाँव चारों तरफ देखते हुए आते हैं। धर्मदास "हर हर" करता हुआ इधर उधर देखकर दिलखुशको इशारा करता है। दिलखुश नेपथ्यकी ओर देखकर किसीको आनेका इशारा करता है। चार आदमी एक बंद पालकी लाते हैं और रखकर दरवाजा खोलते हैं, दिलखुश और पालकी उठानेवाले मिलकर बंधी हुई अचेत मनोरमाको पालकीसे निकाल, उसका बन्धन खोलकर कपड़ेसे हवा करते हैं। सहसा मनोरमा चौंक-कर उठ खड़ी होती है, पालकी वाले पालकी ले जाते हैं।)

मनो०—(चारों ओर देखती हुई डपटकर) अरे दुष्टो! मुझे इस घोर जङ्गलमें क्यों उठा लाये? बोलो, बोलो मुझ मरीको क्यों मारते हो? तुम्हारा विचार क्या है?

(धर्मदास दिलखुशको कुछ कहनेका इशारा करके "हर हर" कहता हुआ चारों तरफ देखता है।)

दिल०—बस यही, कि तू (धर्मदासको दिखाकर) इस महात्मासे प्यार कर।

धर्म०—(आप ही आप जोरसे) हर हर हर हर!

मनो०—(आँखे निकालकर) दूर हो जाओ, नरपिशाचो! दूर हो जाओ, मेरे समीप न आओ। नहीं तो मेरे सतीत्वकी आग तुम दोनोंको जला देगी। अरे हत्यारा दिलखुश! तू दो वर्षतक

मेरा नमक खाकर आज मुझपर ही पाप-दृष्टि डालता है। सावधान ! सावधान !! ऐसा अनर्थ न कर, ईश्वरसे डर।

धर्म्म०—(मनोरमाके पास आकर) हर हर हर हर ! सुन्दरी ! क्यों इतना मान करती है, प्रेमरस क्यों नहीं पान करती है ?

मनो०—(क्रोधसे) ऐ पापी ! क्या तुझे और कोई भी न मिलती थी, जो आज अपने यजमानकी, पुत्रीके समान कुल-वधूपर ही पाप-दृष्टि डालता है ? अरे व्यभिचारी ब्राह्मण ! क्यों अपने आपको नरकमें डालता है ? शर्म कर, अरे पाखण्डी ! इस गुप्ती मालाकी तो शर्म कर।

धर्म०—(लज्जित होकर) हर हर हर हर ! (कहकर हट जाता है और चारों तरफ देखता है।)

दिल०—मनोरमा ! मनोरमा !! बस, यहींतक रहने दो। यदि एक शब्द भी तुमने प्रतिकूल निकाला, तो कुशल नहीं।

मनो०—(डपटकर) अधर्म्मी ! तू अपनी कुशल मना, क्योंकि परमात्मा तेरा अत्याचार देख रहा है।

दिल०—मनोरमा ! मनोरमा !! बताओ, अब तुम इससे प्रेम करोगी या बेमौत मरोगी ?

मनो०—

प्रेम है केवल पतीसे या है उस करतारसे।
हाथ धो बैठो पिशाचो ! इस असम्भव प्यारसे ॥
धर्म छोड़ूंगी नहीं, सर काट लो तलवारसे।
मुक्त कर दो मारकर, स्वारथ भरे संसारसे ॥

दिल०—(कमरसे बंधी तलवार निकालकर)

बोल जो मुखसे तेरे, निकलेंगे अब धिक्कारसे !

यमपुरीका द्वार दिखालाऊँगा, एक ही वारसे ॥

मनो०—(डपटकर)

वार हो सकता नहीं, निर्दोषपर हथियारसे ।

मौत बिन मरता नहीं, कोई किसीकी मारसे ॥

धर्म्म०—(आगे बढ़कर) सुन्दरी ! क्यों वृथा प्राण गँवाती है ?

मान जा अब हठ न कर, आनन्द ले कुछ प्यारका ।

आजतक रोती रही सुख, क्या मिला संसारका ?

मनो०—

मानते जिसको हो सुख, वह दुःख है संसारका ।

नरककी अग्नी है, ऐसा ध्यान अत्याचारका ॥

प्रेम जो मेरा है, यदि होता वो सिरजनहारका ।

मिल गया होता; तुझे प्रतिदान पलके प्यारका ॥

धर्म्म०— (लज्जित होकर) हर हर हर हर !

मनो०—अरे निर्लज्ज ! इस हर हरके नामसे भी तो डर !

मुझको सदा पुत्री कहा, अब यह तुम्हारा धर्म्म है ?

टीका लगा मस्तक पै, माला हाथ; ये अधर्म्म है ? ॥

हा ! नहीं आती तुझे, इस वेशकी भी शर्म्म है ।

है जातका ब्राह्मण, तेरा चण्डाल जैसा कर्म्म है ॥

धर्म०—(डपटकर) चुप रह; दुष्टा ! मुझे चाण्डाल कहती है ? दिलखुश ! बस अब झगड़ा मिटाओ ।

दिल०—तो फिर हट जाओ (तलवार तानकर) बोल; अब अन्तिम बार क्या उत्तर देती है ?

मनो०—यही कि तुम दोनों मनुष्यके वेशमें राक्षस हो:—

दिल०—मान जा नारी हठीली! क्रोध मुझपर छा गया।
देख ले पछतायगी, अब काल तेरा आ गया॥

मनो०—काल मेरा आ गया, तू किस लिये घबड़ा गया?
करके तू अपनी देख ले हरि टेर मेरी पा गया॥

हे भगवान्! मेरा सतीत्व तेरे हाथ है; अनाथोंका तू ही नाथ है।

(सहसा बादल गरजता है, बिजली चमकती है, धर्म्मदास और दिलखुश कुछ भयभीत होते हैं। इतनेमें जोरसे आवाज होती है, एकाएक धर्म्मदासपर बिजली गिरती है और वह मर जाता है। दिलखुश अत्यन्त भयभीत होता है। इतनेमें एक सर्प उसको डॅसता है और वह भी मर जाता है)

मनो०—तुम्हीं हो; दीनानाथ! निर्दोषोंकी सुधि लेनेवाले तुम्हीं हो। उपकार किया प्रभो! तुमने एक अबलाका बेड़ा पार किया!

(मनोरमा ऊपरकी ओर ध्यान लगाये ईश्वरसे प्रार्थना करती हुई खड़ी रहती है।)

तीसरा अङ्क

दृश्य पहला।

(स्थान—महाराज शेरसिहका न्यायालय)

[मध्य भागमें फर्शसे दो हाथकी ऊंचाईपर एक स्वर्ण सिंहासन रक्खा है; उसके सामने एक छोटा सुनहरा टेबिल रक्खा हुआ है; जिसपर कागज कलम दावात है। सिंहासनके सामने फर्शसे दो हाथ ऊंचा एक लड़कीका लम्बा टेबिल रक्खा हुआ है जिसके पीछे एक रुपहली कुरसी रक्खी है। पास ही कुछ कानूनी किताबें; कुछ मिस्लें; कलम दावात, एक लकड़ीका छोटा बाक्स और एक कटारी रक्खी है। लम्बे टेबिलके साथ ही लग हुआ कटघरा है जिसमें एक दरवाजा है; उसके पास ही कई कुर्सियाँ पड़ी हैं। द्वारपर दो सन्तरी और कटघरेके पास दो सिपाही खड़े हैं। चार सिपाही बड़े टेबिलके पीछे हथकड़ी लिये खड़े हैं।]

(बिगुलका बजना, महाराज शेरसिहका आगे आगे, उनके पीछे प्रधान, उनके बाद सरदार व चार सिपाहियोंका आना और अपने अपने स्थानपर खड़े रहना। महाराजका सिंहासनपर और प्रधानका लम्बे टेबिलके पीछे बैठना। प्रधानका मिस्लें उठाकर देखने लग जाना।)

शेरसिंह—(प्रधानसे) आज सबसे पहले मैं उस हत्याकाण्ड वाले विषयपर विचार करूंगा।

प्रधान—(खड़े होकर एक मिस्ल शेरसिंहके आगे रखकर जोरसे आवाज देता है) फ़िरयादी लेखराज ।

(मदनके पिता लेखराजका आना और सर झुकाना ।)

लेखराज—उपस्थित हूं महाराज !

(दो सिपाही हीरालालको हथकड़ी पहनाये हुए लाकर कठघरेमें खड़ा कर देते हैं ।)

शेरसिंह—(मिस्लको पढ़कर) लेखराज ! तुम इस सम्बन्धमें क्या कहना चाहते हो ?

लेखराज— महाराज ! मैं केवल सच्चा न्याय चाहता हूं ।

शेरसिंह—तुमने हीरालालको घटनाके कितने दिन पहले अपने घरमें देखा था ?

लेखराज— घटनावाली रात्रिको यह मेरे पुत्र मदनके शयन-गृहमें सोया था, क्योंकि वह मदनका मित्र है ।

शेरसिंह—(कुछ लिखकर) तुमने कैसे जाना, कि हीरालाल मदनकी हत्या करना चाहता था ?

लेखराज—मैंने यह सब समाचार कालीदाससे सुने ।

शेरसिंह—(कुछ लिखकर) कालीदासको उपस्थित किया जाय ।

(एक सिपाही कालीदासको आवाज देता है । कालीदास, जीवन और दुर्गादास एक साथ आते हैं । जीवन और दुर्गादास पीछे ही खड़े रहते हैं । कालीदास आगे बढ़कर सर झुकाता है ।)

शेरसिंह—कालीदास ! तुमने किस तरह हीरालालको पकड़ाया और इन होनेवाले काण्डोंका हाल तुम्हें कैसे मालूम हुआ ?

कालो०—न्यायमूर्त्ति! मैं उस समय कमलाको अपने घरमें ले जानेके लिये वहाँ गया था; परन्तु इतनी रात्रिके समय द्वार खुला देख मुझे कुछ सन्देह हुआ और मैं दबे पाँव भीतर गया। दालानमें पहुंचते ही मुझे दो मनुष्य आपसमे धीरे धीरे कुछ बातें करते हुए सुनायी पड़े। उस समय चारों ओर अँधेरा था। मैं किसीको पहचान न सका; परन्तु एक कोनेमें छिपकर जब मैंने उनकी बातें सुनीं तो मालूम हुआ, कि एक हीरालाल और दूसरा हरकिशोर है। उनकी बातोंसे ही यह मालूम हुआ, कि दोनों मदनकी हत्या करना चाहते हैं। अतः मैं शीघ्रतासे वहाँसे बाहर निकला और रास्तेमें जाकर चार नगर-रक्षकोंको बुला लाया तथा उन्हें मदनके शयन-गृहमें छिपाया। साथ ही कमलाके ससुर लेखराजको भी समाचार देकर बुला लाया और समयपर इस हीरालालको गिरफ्तार कराया।

शेरसिंह—उस समय तुमने हरकिशोरको भी क्यों नहीं पकड़ाया?

कालो०—जब मैं नगररक्षकोंको साथ लेकर यहाँ पहुंचा तो उस समय इन दोनोंमें वहाँ कोई भी न था। मेरी इच्छा थी, कि ये दोनों जब अपने कार्यमें लगें तब गिरफ्तार कराऊँ। इसी कारणसे मैंने और खोज करना उचित नहीं समझा और उस अवसरपर जो हत्या करने गया था, वही पकड़ा गया।

शेरसिंह—(कुछ लिखकर, मिस्लको देखते हुए) मदनको उपस्थित किया जाय।

(एक सिपाहीका मदनको आवाज देना। मदनका आकर सर झुकाना।)

शेरसिंह—मदन ! तुम हीरालालको किस तरह जानते हो ?

मदन—वह मेरा मित्र है।

शेरसिंह—हीरालाल जिस समय तुम्हारे घर रात्रिको आया था; उस समय क्या उसका यही वेश था, जो अब है ?

मदन—हाँ, यही वेश था।

शेरसिंह—जिस समय वह तुम्हारे पास सोया था; उस समय ये वस्त्र पहने सोया था या वस्त्र उतारकर ?

मदन—ये ही वस्त्र पहने सोया था।

शेरसिंह—उस समय इसके पास कोई शस्त्र था ?

मदन—नहीं।

शेरसिंह—(कुछ लिखकर और मिस्ल पढ़कर) अच्छा, हरकिशोरको उपस्थित किया जाये।

(दो सिपाही जाते हैं और अपनी रक्षामें हरकिशोरको लाकर खड़ा करते हैं। हरकिशोर आगे बढ़कर सर झुकाता है।)

शेरसिंह—हरकिशोर ! तुम भी इस हत्याकी चेष्टा करनेके अपराधमें दोषी पाये जाते हो। अतः यदि कुछ कहना चाहते हो तो कहो।

हरकिशोर—(हाथ जोड़कर) धर्म्मावतार ! मैं निर्दोष हूं और मेरा इस हत्यासे कोई भी सम्बन्ध नहीं। कालीदास अपनी बहन कमलाको बचाना चाहता है। और मुझे शत्रुताके कारण फँसाना चाहता है। वास्तवमें हत्याकी चेष्टा करनेवाली और इस निर्दोष हीरालालको मित्रकी हत्या करनेपर तय्यार करनेवाली कालीदासकी बहन कमला ही है।

शेरसिंह—तुमने यह हाल कैसे जाना ?

हरकिशोर—मैं इनका पड़ोसी हूं। लेखराजके घरके पीछे ही मेरा घर है और मैं बहुत दिनोंसे जानता हूं, कि कमला व्यभिचारिणी है।

शेरसिंह—तुम्हारी और कालीदासकी शत्रुताका क्या कारण है ?

हरकिशोर—कालीदासने एक दिन कमलाको मुझसे बातें करते देखा था, उसी समय हमलोगोंमें कुछ कहा-सुनी हो गयी थी।

शेरसिंह—(कुछ लिखकर) कमला व्यभिचारिणी है, इसका तुम्हारे पास क्या प्रमाण है ?

हरकिशोर—मैंने कई बार कमलाको अर्द्ध रात्रिके समय घरसे बाहर जाते देखा है।

शेरसिंह—(कुछ लिखकर) अर्द्धरात्रिमें जागनेवाले बहुधा चोर या विषम लम्पट ही होते हैं, इससे तुम्हारा और कमलाका भी कुछ सम्बन्ध अवश्य होना चाहिये।

हरकिशोर—नहीं, मेरा कमलासे कोई सम्बन्ध नहीं। जब मेरी स्त्री जीवित थी, उस समय कमला मेरे घरमें आया जाया करती थी। जबसे वह मरी तबसे मैंने कमलाको अपने घरमें नहीं देखा।

शेरसिंह—क्या तुम्हारी और हीरालालकी कुछ जान पहचान है ?

हरकिशोर—नहीं, मैं हीरालालको नहीं जानता।

शेरसिंह (कुछ लिखकर) अच्छा, अब कमलाको उपस्थित किया जाय!

(शेरसिंह मिस्ल पढ़ते हैं। कालीदास, दुर्गादास, लेखराज, जीवन इत्यादि आपसमें इशारेसे पश्चात्ताप करते हैं। एक सिपाही जाता है और कमलाको ले आता है। कमला नीची गर्दन किये, आगे बढ़कर खड़ी होती है।)

शेरसिंह—कमला! तू हरकिशोर और हीरालालको जानती है?

कमला—हाँ, हरकिशोर मेरा पड़ोसी है और हीरालाल मेरे पतिके मित्र हैं।

शेरसिंह—घटनावाली रात्रिको तूने इन दोनोंमेंसे किसीको देखा था?

कमला—केवल हीरालालको मैंने अपने पतिके शयन-गृहमें सोते हुए देखा था।

शेरसिंह—क्या तुझे मालूम है, कि तेरा पति हीरालालको साथ लेकर अपने शयन-गृहमें किस समय गया था? और तू उस समय कहाँ थी?

कमला—हाँ, मैं जानती हूँ। मैं उस समय घरमें थी।

शेरसिंह—तुझे मालूम था, कि हीरालाल वहाँ सोया है?

कमला—हाँ।

शेरसिंह—क्या तू परपुरुषोंकी उपस्थितिमें भी अपने पतिके घरमें चली जाती है?

कमला—नहीं, यह कुल-वधुओंकी चाल नहीं है।

शेरसिंह—(कुछ लिखकर) हरकिशोरकी स्त्रीसे तेरा परिचय था या नहीं ?

कमला—(स्वतः) कहीं सन्देह न हो जाय ; (प्रकट) नहीं।

शेरसिंह—(कुछ लिखकर और थोड़ी देरतक मिस्ल पढ़कर सोचते और हीरालालकी ओर देखते हुए) हीरालाल ! तुम यह षड़यन्त्र रचने और मदनकी हत्या करनेके विषयमें दोषी पाये गये। यदि कुछ कहना चाहते हो तो कहो ?

हीरालाल—(हाथ जोड़कर) धर्म्मावतार ! मैं हत्या करनेके लिये गया, समयपर पकड़ा गया और मैं दोषी हूं। परन्तु आप न्याय आसनपर विराजमान हैं, इस षड़यन्त्रका सच्चा न्याय करिये। मैं मृत्युके मुखमें पड़ चुका हूं, फिर भी मैं अपना हाल सत्य सत्य कहता हूं। घटनाकी रात्रिको मैं मदनके घर गया था। मदनने उस रातमें मुझे वहीं सोनेके लिये आग्रह किया और मैं वहीं सो रहा। सहसा अर्द्धरात्रिके समय मेरी आँखें खुलीं तो मैंने देखा कि कमला दबे पाँव आयी और उस शयन-गृहमें रखी हुई लोहेकी तिजोरी खोलकर एक लकड़ीका छोटा बाक्स, जिसमें कुछ गहना था, ले गयी। उस समय मुझे कुछ सन्देह हुआ। साथ ही मैं कमलाका रूप देखकर मोहित हो गया। मैं उसी समय उठकर कमलाके पीछे पीछे छिपकर चला। कमला अपने घरके बगलवाले घरमें गयी। मैं भी इसके पीछे था। कमलाने वह गहनेवाला बाक्स ले जाकर हरकिशोरको दिया। हरकिशोरने कमलासे उस समय यह कहा कि तू मदनकी हत्या कर और स्वतन्त्र होकर मेरे साथ किसी अन्य देशमें चली चल। कमलाने

ऐसा करना अस्वीकार किया। इसपर हरकिशोरने इसे बहुत डाँटा और इससे अपना मन हटा लेनेकी बहुत सी धमकियाँ देने लगा। कमलाका हरकिशोरपर प्रगाढ़ प्रेम था। इसी कारण कमला लाचार होकर ऐसा करनेपर तैयार हो गयी। उसी समय हरकिशोरने कमलाको घरके अन्दर ले जाकर कुछ समझाया। मैं उस समय कमलाके आनेसे पहले ही इसके घरमें जाकर छिप रहा। इतनेमें कमला भी आयी और दालानमें अपना विचार स्थिर करने लगी। जब मैंने देखा कि कमला अपनी कमरसे एक कटारी निकालकर मदनकी हत्या करने जाती है, उसी समय मैंने कमलाके सन्मुख होकर उसे ऐसा करनेसे रोका। मैं इसपर आसक्त हो चुका था, इसलिये साथ ही साथ अपना प्यार जताते हुए मैंने उससे कहा कि तू मेरे साथ प्रेम कर और मदनको न मार। इसपर मेरे साथ सम्बन्ध करनेके लिये वह इस शर्तपर तय्यार हुई कि मैं मदनको मार, उसको लेकर अन्य देशमें चला चलूँ। मैं उस समय कामान्ध था। इसलिये मैं मदनकी हत्या करनेके लिये कमलासे कटारी लेकर शयन-गृहमें गया और हत्याकी चेष्टा करते ही पकड़ा गया। महाराज! कमलाने मुझे अपने कपट-प्रेममें फँसाकर मुझसे यह कार्य कराना चाहा था, अब आपके न्यायपर ही सब कुछ निर्भर है जो चाहें दण्ड दीजिये।

(शेरसिंह कुछ देरतक हीरालालका बयान लिखते हैं,
लेखराज, कालीदास, दुर्गादास, मदन, जीवन,
इत्यादि कमलाको इशारेसे धिक्कारते हैं,
कमला अत्यन्त व्याकुल नजर आती है।)

कालीदास—(कुछ व्याकुल होकर धीरेसे दुर्गादासको कहता है।) दुर्गादास ! मेरे सब विचारोंपर पानी फिर गया। हाः ! अब कमला नहीं बच सकती।

दुर्गादास—(धीरेसे) सत्य है, पर इस समय धैर्य्यसे काम लो।

(कालीदास अपने मनमें पश्चात्ताप करता हुआ कुछ हटकर खडा रहता है।)

शेरसिंह—प्रधानजी ! वह कटारी कहाँ है ?

प्रधान—यह है महाराज ! जो हीरालालके हाथमें थी।

(प्रधान कटारी शेरसिंहको देता है। शेरसिह अच्छी तरह उसे उलट पुलटकर देखते हैं।)

शेरसिंह—प्रधानजी ! हरकिशोरके पकड़े जानेपर उसके घरमें क्या पाया गया था ?

प्रधान—एक गहनेकी पेटी और इस कटारीकी खोल।

(प्रधान दोनों चीजें शेरसिहको देता है, शेरसिह कटारीकी खोलमें वह कटारी डालकर देखते हैं और सोचकर कुछ लिखते हैं। हरकिशोर चौंक उठता है। शेरसिह पेटीमेंसे एक सोनेका हार निकालकर देखते हैं।)

शेरसिंह—लेखराज ! तुम इस हारको पहचानते हो ?

(शेरसिह वह हार एक सरदारके द्वारा लेखराजको देते हैं)

लेखराज—(आगे बढ़कर हार लेकर देखते हुए) हाँ महाराज ! यह हार बहू कमलाका ही है। यह मैंने ही बनवाया था।

(कालीदास, दुर्गादास और जीवन अपने मनमें पश्चात्ताप

करते हैं। सरदार वह हार लेकर शेरसिंहको देता है।
शेरसिंह उसे रखकर कुछ लिखते हैं।)

शेरसिंह—अब मैं इस घटनाको अच्छी तरह समझा। मैं नहीं जानता था, कि मेरे राज्यमे ऐसे घोर अत्याचार होते हैं। प्रधानजी! क्या नगरकी रक्षा और प्रजाकी देखभालका भार इसीलिये आपको दिया गया है, कि ऐसी ऐसी घटनायें बहुधा दिखलायी पड़ें?

प्रधान—(हाथ जोड़कर) महाराज! यह घरके भीतरकी घटनायें हैं, इसका प्रबन्ध भला कहाँतक हो सकता है?

शेरसिंह—क्यों नहीं हो सकता? अच्छा इसका प्रबन्ध मैं स्वयं करूँगा। जिस राज्यमें प्रजाकी घरेलू घटनाओंका पता नहीं लिया जा सकता, उस राज्य-शासनको मदारीका खेल कहना चाहिये।

अच्छा, अब मैं इस मामलेपर विचार स्थिरकर दोषियोंको दण्ड देता हूं।

(शेरसिंह मिस्लको विचारके साथ पढ़कर साथ ही साथ कुछ लिखते
जाते हैं, कुछ देर बाद अपना लिखा आप पढ़कर
देखते हैं, फिर प्रधान पढ़कर सुनाता है।)

प्रधान—(लिखे हुए कागजोंको देखकर पढ़ता है।)

१ हरकिशोर, हीरालाल और कमलाके बयानसे प्रत्यक्ष प्रमाणित होता है, कि कमला व्यभिचारिणी है, और हरकिशोर तथा कमलाका गुप्तप्रेम था। इसीलिये हरकिशोरने स्वतन्त्र होनेके वास्ते कमलासे पति-हत्या करानेका आग्रह किया

और इस घटनाका मूल कारण हरकिशोर ही है। इसी अपराधपर हरकिशोरको आजन्म कारावासका दण्ड दिया जाता है।

(हरकिशोर सर पीटकर रोने लगता है।)

२ दूसरे, हीरालाल कमलापर मुग्ध था। इसने कामान्ध होकर हत्या करना चाहा; यदि समयपर कालीदास मदनकी रक्षा न करता, तो इसमें सन्देह नहीं कि हीरालाल मदनको मार डालता। परन्तु मदन बच गया। इससे हीरालालको मित्र बधकी चेष्टा करने और मित्रकी स्त्रीपर कुदृष्टि डालनेके अभियोगमें सात वर्ष कारागारवासका दण्ड दिया जाता है।

(हीरालाल अपने माथेपर हाथ मारकर रोता है।)

३ तीसरे, कमला व्यभिचारमें पड़कर अपने पतिकी हत्या करने और हीरालालसे हत्या करानेकी दृढ़ चेष्टाके अपराधकी अपराधिनी पायी गयी; परन्तु कारावासका दण्ड न देकर कमलाके लिये यह आज्ञा है, कि कमलाको शहरके बाहर छोड़ दिया जाय और सगा-सम्बन्धी कोई भी इस राज्यमें उसकी सहायता न करे। कमलाकी सहायता करते हुए जो पकड़ा जायगा उसे एक वर्ष कारागारवासका दण्ड दिया जायगा।

(कुछ सिपाही हरकिशोर और हीरालालको ले जाते हैं।)

४ कालीदासने एक निर्दोषकी रक्षा बड़ी सावधानीसे की। इसलिये राजाज्ञासे कालीदासको पाँच सौ मुद्रा पुरस्कार दिया जाय।

शेरसिंह—(कुछ क्रोधित होकर) ले जाओ इस व्यभिचा-

रिणीको, शहरके बाहर छोड़ दो और सर्वसाधारणको सूचित कर दो कि कोई इसकी सहायता न करे।

(कालीदास अत्यन्त शोकातुर होकर दुर्गादासके कन्धेपर हाथ रख देता है। दो सिपाही कमलाको ले जाते हैं।)

दुर्गादास—(धीरेसे) कालीदास! ऐसा न करो। उसने अपनी करनीका फल पाया है। समझ लो, यह तुम्हारे घरमें पैदा नहीं हुई थी, इस समय धैर्य धरो मनोरमाकी खोज करो। महाराजने तुम्हें पुरस्कार दिया है। वह न लेकर उनसे प्रार्थना करो, जिससे उस दुष्ट मनोरञ्जनको भी दण्ड दिया जाय?

कालीदास—(सहसा चौंककर) मित्र! तुमने अच्छे अवसर-पर याद दिलाया। (आगे बढ़कर) महाराज! मैं कुछ प्रार्थना और भी करना चाहता हूं।

शेरसिंह—बोलो, क्या चाहते हो?

कालीदास—यही कि पुरस्कारके स्थानपर मुझे यह पुरस्कार दिया जाय, कि मेरे एक कपटी मित्रने धोखा देकर मुझसे एक पुर्जा इक्कीस हजारका लिखाया है और मुझपर झूठा दावाकर वह रुपये उसने आज पाये हैं। महाराज! मैं इसका न्याय कराना चाहता हूं।

शेरसिंह—रुपये लेनेवालेका क्या नाम है?

कालीदास—उसका नाम मनोरञ्जन है।

शेरसिंह—(कुछ लिखकर) प्रधानजी! क्या आज किसीका इक्कीस हजार रुपया तुम्हारे न्यायालय द्वारा किसीको दिया गया है?

प्रधान—(कुछ सोचकर) हाँ, मैंने आज यह मामला अपने न्यायालयमें किया था, परन्तु कालीदासके लिखे रुक्केके अनुसार वह वसूल हुई रकम मनोरञ्जनको दे दी गयी। उस समय विरोधी कोई नहीं था; इस कारण आगे विचार न हो सका।

शेरसिंह—कालीदास! तुम इस मामलेका पूरा पूरा वृत्तान्त लिखकर उपस्थित करो। मैं अवश्य इसपर विचार करूँगा। प्रधानजी! इस झूठी रकम लेनेवालेको गिरफ्तार किया जाय और इसपर पुनः विचार किया जाय। अन्य विचार आज स्थगित रहे।

प्रधान—जाओ चार सिपाही कालीदासके साथ जाकर मनोरञ्जनको गिरफ्तार करो।

(शेरसिंहके पीछे पीछे सबका प्रस्थान)

दृश्य दूसरा।

[स्थान—इफालचन्द वकीलका घर]

(पण्डित बगलोलानन्दका प्रवेश)

बग०—(माथा ठोककर) धत्तेरे नसीबकी ऐसी तैसी! जहाँ देखो, जिधर देखो पोथी-पत्रा लिये एक न एक उपस्थित है! बस "गणा नांत्वा गणपति गूँहत्ना" पढ़ना आया, दो चार सङ्कल्प याद कर लिये और लगे घर घर भीख माँगने। यदि किसीने कहा "महाराज! एकादशीको आना" तो लोग दशमीको

ही उपस्थित हो जाते हैं। क्या बताऊँ ? यह भीख माँगनेवाले तो बरसाती मेंढकोंकी तरह प्रतिदिन बढ़ते ही जाते हैं! पाठ-पूजाका तार नहीं जमता, व्यापार हीमें टाँग अड़ाते हैं। इन लण्ठ ब्राह्मणोंने तो "दो पैसे" हजारका जप और पाँच आने महीनेका "दुर्गापाठ" "पाँच पैसेका गोदान" करवा करवाकर यजमानोंका मिजाज ही बिगाड़ डाला। अब हम पढे लिखे पण्डितोंकी दाल गले तो कैसे गले !! (दर्शकोंसे) अब मित्रो! इन मूर्ख पण्डितोंसे कौन सा काम बाकी बचा है! जो मैं दो पैसे कमाऊँ ? बाहर जाता हूँ तो व्यापार नहीं मिलता। घर बैठूं तो पण्डिताइन कोसती हैं; कि तुम कमाते ही नहीं। अब मैं करूँ तो क्या करूँ ? (ठडी साँस लेकर) अच्छा, आज अपने पुराने यजमानके घर आया हूँ, देखें भाग्य कुछ गवाही देता है कि नहीं।

(कल्लू का रोते हुए आना और आकर फर्शपर बैठ जाना। बगलोलानन्दका आश्चर्यसे देखना।)

बग०—अरे भाई! तू रोता क्यों है?

कल्लू—क्या रोता हूं पण्डितजी! जीती हुई बाजी हार गया।

बग०—(आश्चर्यसे) अरे तो हुआ क्या?

कल्लू—हुआ क्या! अब आँखें खुलीं तो हाथमें लँगोटा लेकर पूछता फिरता हूं, कि बारात किधर गयी?

बग०—अरे किसकी बारात, कुछ सर पैर भी हो?

कल्लू—मेरी बारात और किसकी?

बग०—तो तेरा विवाह कब हुआ?

कल्लू—अभी अभी सपनेमें (रोने लगता है।)

बग०—(खिलखिलाकर हँसते हुए स्वतः) कैसा मूर्ख है! बस ऐसे ऐसे मनुष्य ही संसारमें बढ़ते जाते हैं।

कल्लू—अब तो यही चित्त चाहता है, कि अपना गला घोटके मर जाऊँ।

बग०—भाई! यदि तुम मर गये तो मैं तो अवश्य डेढ़ पाव दूध गंगाजीको चढ़ाऊँगा।

कल्लू—यह किस कारण?

बग०—इस हर्षमें कि इस महँगीके समयमें यदि एक आदमी मर जायगा तो भला कुछ अन्न तो सस्ता होगा!

कल्लू—(झुझलाकर) अजी तुम तो हँसी समझ रहे हो, और मैं क्वारा ही रह गया।

बग०—अच्छा, तो मुझे यह तो बता कि मेरे यजमान और यजमानिन कहाँ हैं?

कल्लू०—वह दोनों आपसमें मुकद्दमा लड़ रहे हैं।

बग०—हैं! क्या मेरे यजमानने अपने घरमें ही न्यायालय स्थापित किया है?

कल्लू—नहीं वकील साहब, न्यायालयमें तो दिनके वक्त मुकद्दमे लड़ते हैं और रातको जोरूके इजलासमें घरके झगड़े निपटाते हैं। बस, आप इस समय जाइये, नहीं तो इस गरमा गरमीमें आपकी भी कुशल नहीं।

बग०—(चौंककर) तो क्या वे आपसमें लड़ते हैं?

कल्लू—(झुंझलाकर) हाँ, हाँ, हाँ, अब समझे? जाओ शीघ्र चले जाओ।

बग०—(माथा ठोंककर) सच कहा है :—

"मन चाहता पहिरें चौतारा।
करममें लिखा भेड़ी कै बारा॥"

(बगलोलानन्दका प्रस्थान)

कल्लू—(स्वतः नेपथ्यकी ओर देखकर) यह लीजिये, एक तो मगज चाटकर गया। दूसरे वकील साहब सर खानेके लिये आ रहे हैं।

(डफालचन्दका क्रोधमें भरे आना)

डफाल०—क्यों बे! तूने अभीतक खानेका टेबिल नहीं सजाया।

कल्लू—(स्वतः) आयी शामत! (प्रकट) क्षमा करिये, भूल गया था।

डफाल०—(आँखें निकालकर) तो यहाँ करता क्या था?

कल्लू—आपके घरकी ईंटे गिनता था।

डफाल०—(आश्चर्यसे) ईंटे गिनता था सो क्यों?

कल्लू—मैं हिसाब करता था, कि यदि एक ईंट रोज ले जाकर बेंच खाऊँगा तो कितने दिनतक इस घरमें नौकरी कर सकूँगा।

डफाल०—अबे मूर्ख! ईंट क्यों बेंचेगा?

कल्लू—इसलिये, कि पाँच रुपये महीनेमें गुजारा नहीं चलता और वेतन भी हर महीने नहीं मिलता।

डफाल०—(दाँतोंसे उँगली काटकर) अच्छा, कल तुझे रुपये दूँगा।

कल्लू०—(जाते जाते स्वतः) अब आया राहपर।

(जाता है।)

डफाल०—(स्वतः) सच तो बेचारा कहता है। पर रुपये लाऊँ तो, कहाँसे लाऊँ? (पतलूनको खाली जेबें दिखाता हुआ) यहाँ तो दोनों जेब भरे रहते हैं। जोरूकी खरीदीने तो दीवाला निकाल रक्खा है। कमाईका क्या पूछना है, कोई मुअक्किल मिल गया तो दो चार रुपये मिल जाते हैं, नहीं तो रोते पीटते घर चला आता हूं। (सहसा प्रसन्न होकर) ऊँः! चलो फिर भी क्या परवाह है! क्या हम किसी कंगालसे कम हैं! और कुछ नहीं तो मुअक्किलोंके सामने दो चार लाख रुपये मुँहसे ही गिन जानेमें अपने आपको बड़ा आदमी समझते हैं। पर एक बात है, यदि मेरा तीर निशानेपर लगा! तब तो आज रुपये पाँच सौ टन्न टन्न करते हुए मेरे पास आ जायँगे।

(सहसा नेपथ्यकी ओर देखकर, चौंकते हुए)

हैं! यह कौन!! (सोचकर) बस चालाकीसे काम लेना चाहिये। आदमी तो कोई भला जान पड़ता है। (मूछोंपर ताव देता टेढ़ी टाँगें किये हुए एक ओर मुँह मोड़कर टेढ़ा हो जाता है।)

(मंगलसिंह हाथमें रजिस्टर लिये आता है।)

मंगलसिंह—(रुककर स्वतः) है तो आनन्दमें! बस आज इससे चन्दा मिल जायगा। (आगे बढ़कर प्रकट) वकील महाशय, जय शक्तिकी।

डफा०—(घूमकर देखते और हंसते हुए) अहा ! आइये महाशय ! कहिये ! कहिये !! आज तो बड़ी दया की ।

मंगल०—आप धन्य हैं ! आपकी योग्यता सराहनीय है । मैं भी आपका नाम सुनकर ही आपकी सेवामें उपस्थित हुआ हूं ।

डफाल०—तो बड़ी कृपा की । कहिये किसीपर नालिश करनी है या कोई सलाह पूछनी है ?

मंगल०—किसपर नालिश करनी है ? देश-सेवाके लिये आप जैसे सज्जनोंके आगे ही प्रार्थनाकर कुछ रुपये निकालने हैं ।

डफाल०—इसकी चेष्टा तो करनी ही चाहिये । तो शीघ्र कहिये ! किसम्ने लेना हैं ? मैं आज ही बन्दोबस्त करूँगा ।

मंगल०—तो फिर इससे बढ़कर और क्या चाहिये, जैसा आपका नाम वैसा ही काम होना चाहिये । मैंने तो आपका बड़ा नाम सुना है और सुना है, कि आप एक एक बार हजारों रुपये चन्देवालोंको दे डालते हैं ।

डफाल०—(स्वतः) हैं ! बिना दिये ही इतना नाम !! तब तो बड़ा भाग्यवान हूं !! (प्रकट) अजी भाई साहब ! यह तो आप मेरी वृथा ही बड़ाई करते हैं । मैं तो एक साधारण वकील हूं; पर फिर भी महीनेमें दो चार हजार योंही जाता ही है । अच्छा; तो अब सारा मामला सुनाइये, मैं लिखता जाता हूं । (जेबसे कागज पेन्सिल लेकर लिखनेको तय्यार होता है ।)

मंगल०—(रजिस्टर खोलकर) तो इसपर कमसे कम पाँच सौ रुपये चन्दा आप भी लिख दीजिये ।

डफाल०—(चौंककर) हैं! चन्दा लिख दीजिये; कैसा चन्दा लिख दूँ ?

मंगल०—श्रीविश्वनाथ दातव्य समिति काशीके सहायतार्थ चन्दा। मैंने आपसे अधिक नहीं माँगा।

डफाल०—(स्वतः) अरररर! यह तो पाँच सौ रुपये चन्दा माँग बैठा! अब क्या करूँ ? बातें तो बड़ी लम्बी-चौड़ी कर चुका, अब इसे क्या कहकर टालूँ ? हाय, हाय! यह रोजीमें रोजा कहाँसे निकल आया! मैंने तो इसे मुअक्किल समझा था। (सोचकर) बस, इसे यहाँ बैठाऊँ और आप सटक जाऊँ। (प्रकट) अजी महाशय! आप फिर किसी समय कृपा करिये, इस समय तो मुझे एक जरूरी कामसे जाना है।

मंग०—तो क्या हर्ज है, मैं फिर आ जाऊँगा। (रजिस्टर ले करके) पर इसपर लिख तो दीजिये फिर ले लेंगे, रुपयेकी क्या बात है ?

डफाल०—(स्वतः) लिखनेमें क्या खर्च होता है, देगा कौन ? (प्रकट) हाँ, हाँ, लिख देता हूं। रुपयेकी क्या बात है, अभी कहींसे आ जाय तो अभी दे दूँ। (रजिस्टरपर लिख देना)

मंगल०—यह तो मैं सुन चुका हूं, कि आपके पास रुपयेकी कमी नहीं है; ईश्वर आपको आरोग्य रक्खे। आप बड़े ही दयालु हैं।

(एक जमीन्दारका प्रवेश)

जमी०—(आते ही) वकील साहब, राम राम !

डफाल०—ओ हो! आपको स्वयं कष्ट उठाना पड़ा ?

जमीं०—तो इसमें क्या हर्ज है, यह भी अपना घर है (जेबसे नोटोंका एक बण्डल निकालकर) लीजिये, यह पाँच सौ रुपये और कल अदालत खुलते ही काम हो जाय।

डफालचन्द—(बड़ी प्रसन्नतासे नोट लेनेके लिये हाथ बढ़ाते हुए) आपको बड़ा कष्ट हुआ।

मंगल० —(नोट अपने हाथमें लेकर) लाइये, मैं गिन लेता हूं, आखिर गिनना तो होगा ही।

(डफालचन्द मनमें बड़ा दुःखी होता है। मगलसिंहपर दाँत पीसता है। मगलसिंह नोट गिनने लग जाता है।)

डफाल०—(स्वतः) हाय हाय ! मैं तो जीता ही मरा। अररररर ! बेमौत मरा ! (प्रकट व्याकुलताको छिपाता हुआ) तो चलिये चलिये, अन्दर चलिये, बैठकर बातें होंगी।

जमीं०—नहीं, अब मैं फिर मिलूँगा, आप सब लिख-पढ़कर तय्यार करिये।

मंगल०—(नोट लेकर चलते हुए) अच्छा तो जयशक्तिकी वकील साहब।

डफाल०—(घबड़ाता हुआ) अजी ठहरो ठहरो, जाते कहाँ हो ?

मंगल०—महाशय ! अब मुझे भी बिलम्ब हो रहा है, कल आपकी प्रशंसा समाचार पत्रोंमें छप जायगी।

डफाल०—अजी ठहरो तो सही, यह रुपये तो देते जाओ।

मंगल०—आखिर फिर तो आपको देना ही पड़ेगा। यह हिसाब ऊपर ही ऊपर निपट गया। अच्छा जयशक्तिकी।

डफाल०—(मंगलसिंहकी बाँह पकड़कर) वाह वाह ! यह तो अच्छी रही। लाओ, रुपये लाओ।

जमीं०—बात क्या है ?

मंगल०—(रजिस्टर दिखाकर) देखिये, वकील साहबने कितने पुण्यका काम किया है। पाँच सौ रुपया चन्दा लिख दिया है।

डफाल०—(स्वतः) पर मेरा तो दीवाला निकल रहा है।

जमीं०—वकील साहब ! आप तो बड़े धर्म्मात्मा हैं।

तो राम राम (जाता है।)

मंगल०—(जाते जाते) अच्छा तो चलता हूं।

डफाल०—(आगे बढ़कर उसकी बाँह पकड़कर) अजी तुम तो बड़े ढीठ हो ? रक्खो यहाँ रुपये।

मंगल०—(आश्चर्यसे) हैं ! यह आप कैसा व्यवहार करते हैं ? क्या आपने चन्दा लिखा नहीं ?

डफाल०—(कुढ़कर) तो क्या अभी दे दूँ ? फिर ले जाना; इस समय नहीं दे सकता।

मंगल०—(महाशय) यह बात है, कि चन्देका रुपया बार बार नहीं निकलता, इस वास्ते ले जाता हूं, आपको क्या कमी है।

डफाल०—(स्वतः) अरे यहाँ तो घर ही तबाह है। (प्रकट) अजी तुम सुनते नहीं। लाओ रुपये।

मंगल०—अब तो नहीं दे सकता, क्योंकि जमा कर चुका हूं। अच्छा राम राम।

डफाल०—(रोककर) हैं ! तुम तो बढ़ते ही जाते हो ! बस रख दो रुपये ।

मंगल०—(जाते जाते) अजी, जाने दीजिये ।

(डफालचन्द अपनी तरफ उसे खींचता है, मगलसिंह डफालचन्दको खींचता है ।)

डफा०—अजी ठहरो ।

मंगल०—बस जाने दो !

डफाल०—मैं अपना रुपया नहीं छोड़ूंगा ।

मंगल०—मैं भी अपना नियम न तोड़ूंगा ।

डफाल०—मैं तेरा सर फोड़ूंगा ।

मंगला०—मैं रुपये लेकर छोड़ूंगा ।

डफाल०—अच्छा तो देख ।

मंगला०—अच्छा तो देख ।

(इसी प्रकार दोनों लड़ते हुए चले जाते हैं ।)

दृश्य तीसरा ।

[स्थान—रजियाका नवीन गृह ।]

(बीचमें एक कोच और चार कुर्सियां रखी हुई हैं । रजिया और श्यामलाल दोनों एक साथ एक दूसरेका हाथ पकड़े आते हैं और एक ही कोचपर बैठ जाते हैं)

श्यामलाल०—(मुस्कराकर) रजिया बीबी ! कहो, अच्छी तो हो ?

रजिया०—सब अल्लाहका फजल है। कहिये, आज किधर रास्ता भूल गये ?

श्याम०—(ठण्डी साँस लेकर) प्यारी रजिया ! :—

प्यार तेरा बनके बादल, दिल पै मेरे छा गया।
इसलिये योंही अँधेरेमें, भटकता आ गया॥

रजिया—(मुस्कराती हुई और सर हिलाती हुई)

यह इशारा आपका; मतलब सभी समझा गया।
शुक्र है नाचीजपर, गर आपका दिल आ गया॥

श्याम०—ये सब ऊपरी बातें रहने दो—

सुनाकर बोल यह मीठे, मुझे बीमार करती हो।
बेगाने दिलसे क्यों रजिया ! यह झूठा प्यार करती हो ?

रजिया—नहीं नहीं, ऐसा न फरमाइये :—

नहीं गैरोंका यह दिल है, अगर है तो तुम्हारा है।
तुम्हारे ही लिये औरोंसे, कर डाला किनारा है॥

श्याम०—यदि ऐसा है, तो क्या वह तुम्हारा प्रेमी मनोरंजन तुमसे झूठा प्यार करता है ? तुमपर योंही मरता है ?

रजिया—हाँ, मुझपर मरता है, पर वह बिना पैसेके प्यार करता है। आप जानते ही हैं कि हमलोगोका खर्च न चलानेवाला भला कबतक हमारे यहाँ जगह पायगा ?

श्याम०—पर अब तो वह मालदार हो गया है; वह अब कब तुम्हें छोड़कर जायगा ?

रजिया—वह तो सदाका कंगाल है, रण्डियोंका दलाल है। उसके पास रुपया कहाँसे आया ?

श्याम०—अभी तो उसने कल हमारे मुहल्ले के सेठ किशोरी-लालके पुत्र कालीदाससे एक झूठे हैंण्डनोटका इक्कीस हजार रुपया पाया है, जिसके वास्ते उसके मित्र दुर्गादासने घर घर हल्ला मचाया है।

रजिया—(आश्चर्यसे) हैं! यह आप क्या कहते हैं? क्या यह बात सच है?

श्याम०—हाँ सच है, ठीक कहता हूं।

रजिया—यह तो मेरे रुपये थे, क्या उसने यहाँ भी मुझसे बेईमानी की? देखिये कैसा जमाना है! वह हैण्डनोट सच्चा था, मैंने रुपये कर्ज देकर लिखवाया और मैंने ही उसका मामला मनोरंजनके नामसे चलवाया; अब देखिये रुपया आया है, तो उसने मुँह भी नहीं दिखाया है। कल रातको मुझसे खर्च अदा-लतके लिये उलटे पाँच सौ और ले गया है।

श्याम०—यह तो उसकी चालाकी है। यदि उसने ऐसा किया है तो उससे शीघ्र ही रुपये निकालो।

रजिया—तो फिर इस मामलेमें आप ही हाथ डालें। यदि आप मेरा यह काम निकाल देंगे तो मैं आपकी ही हूं।

श्याम०—तो क्या सच कहती हो?

रजिया—हाँ ठीक कहती हूं :—

मुँह मोड़कर बैठोगे अगर तुम न प्यारसे।
मतलब न रहेगा; किसी मतलबके यारसे॥

श्याम०—अब सर भी मेरा काट ले, कोई कटारसे।
बदलूँगा नहीं मैं कभी, कौलो-करारसे॥

तय्यार हूं; प्यारी रजिया ! तेरे लिये सब तरह तय्यार हूँ ।

रजिया—तो मैं भी आपकी हो चुकी ।

श्याम०—मैं आज ही उसे अमानतमें खयानत करनेके अभियोगमें फसाऊँगा और आज ही उसे गिरफ्तार कराऊँगा ।

रज़िया—ठीक है; आज वह मेरे पास अदालतका खर्च लेने आयगा, हो सके तो आज ही उसका बन्दोबस्त कर डालिये ।

श्याम० —अच्छी बात है, जब वह यहाँ आकर तुमसे बातचीत करेगा ; उस समय मैं उठकर चला जाऊँगा और शीघ्र ही नगर रक्षकोंको लाकर उसे गिरफ्तार कराऊँगा ।

(श्यामलाल और रजिया हँस हँसकर कुछ बाते
करने लगते हैं । सहसा मनोरञ्जन आ जाता
है, और दोनोंको एक साथ बैठे देखकर,
मन ही मन क्रोधित होता है ।)

मनो०—(सर हिलाता हुआ, स्वतः) रज़िया ! रजिया !! मैं नहीं जानता था; कि तू मुझसे भी रण्डियोंवाला झूठा प्यार करती है, सच है :—

रण्डीकी है यह जात, रस्तेपर न आयेगी कभी ।
फन्देमें इसके एक दिन, बस जान जायेगी कभी ॥

(क्रोधसे रजियाकी ओर देखता और दाँत पीसता हुआ)

नहीं सहन कर सकता, नहीं सहन कर सकता, बस रजिया अब मैं तेरी झूठी सफाइयोंमें आनेका नहीं । अब तुझे दूसरेसे प्यार करनेका स्वाद् चखाऊँगा, :

प्रेमकी घातें तेरे अब, काम आयेंगी कभी ।
म्यान एकमें दो छूरी रहने न पायेंगी कभी ॥

(दोनोंको घूरता हुआ चला जाता है ।)

रजिया—प्यारे ! मगर देखना यह काम बड़ी होशियारीसे करना ; क्योंकि वह भी बड़ा फरेबी है ।

श्याम०—(लापरवाहीसे) ऊँ : ! तो क्या मैं उससे डरता हूँ ? वह सेर है तो मैं सवासेर हूं ।

(मनोरञ्जनका आकर देखते रहना ।)

रजिया—वल्लाह ! आप तो हरफन मौला नजर आते हैं ! जो हो, प्यारे ! मैं भी कभी तुमसे मुंह न मोड़ूंगी । मुझे भी तुम्हारे सिवा आजतक मन मुआफिक कोई न मिला :—

तुम्हें पाया अगर पाया, जो आया बेखबर आया ।
कसौटीपर जिसे परखा, वही पीतल नजर आया ॥

मनो०—(स्वतः) ठहर जा, ठहर जा, अभी प्यार करनेका मजा चखाता हूं ।

(मनोरञ्जन आगे बढ़ता है, रजिया और श्यामलाल दोनों चौंकते हैं, रजिया उठ खड़ी होती है, मनोरञ्जन कुछ रूखा चेहरा बनाये एक कुरसीपर बैठ जाता है ।)

श्माम०—तो रजियाबाई ! अब मैं फिर मिलूंगा । (जाता है ।)

रजिया—(मनोरञ्जनके पास बैठकर) प्यारे ! आज उदास क्यों हो ? :—

क्या हुआ दिल किस लिये; रंजिशसे ऐसा घिर गया ?

क्या हुआ दिल खुशनुमा, क्योंकर अचानक गिर गया ?

मनो०—(रुखाईसे)

प्यारमें औरोंके आनेसे, मेरा दिल चिर गया।
जन्म भरकी सब मेरी मिहनत पै पानी फिर गया॥

रजिया—(अपने आपमें क्रोध प्रकट करती हुई) यह क्यों! यह क्यों!! आखिर बात क्या है ?

मनो०—यही, कि :—

क्या करे चाहनेवालोंका भरोसा कोई।
सच है दुनियाँमें किसीका नहीं होता कोई॥
तुमको कुछ भी नहीं आया मेरी नेकीका खयाल।
यों भी कर लेता है पत्थरका कलेजा कोई ?

रजिया—यह क्या कहते हो ?

मरू' मैं तुम पै, तुम कोशिश करो मेरे सतानेकी।
बफादारी यही क्या रह गयी है इस जमानेकी ?

क्या तुमने मुझे ऐसी समझ लिया; कि मैं दूसरेको प्यार करती हूं ?

मनो०—मैं तो ऐसा ही समझता हूं। तू धोखेबाज है। बस, आजसे तेरा मेरा कोई मतलब न रहेगा।

रजिया—हाँ! अच्छा तो ऐसा ही सही। मगर मैं तो समझती हूं कि मैं बेकसूर हूं'। खैर, इन बातोंको जाने दो। लाओ, भला ये इक्कीस हजार रुपये तो दो। मुझे जरूरत है, क्योंकि कुन्दनने मुल्कमें जाते ही एक मकान खरीद लिया है।

मनो०—रुपये कैसे ?

रजिया—वही कालीदासके हैण्डनोटवाले ।

मनो०—(स्वतः) अच्छी तरह रुपये दूंगा । (प्रकट) हाँ, वह मामला तो आज खारिज हो गया, इसीसे तो आज मैं अदालत खर्चके लिये रुपये लेने नहीं आया ।

रजिया—(सर हिलाती हुई, स्वतः)

बनाते हैं उसे जिसने हजारोंको बनाया है ।
जरा देखो तो पैसेके लिये-क्या रुख दिखाया है ॥
रकम मेरी लगी है हाथ तो अब मुंह फुलाया है ।
उसीसे फन चलता है कि जिसने फन सिखाया है ॥

(प्रकट) मनोरंजन ! देखो मैं रण्डी हूं, मुझे फरेबकी बातोंमें न भुलाओ । अगर भला चाहते हो तो मेरे रुपये लाओ ।

मनो०—तुम तो खामखाह मेरे पल्ले पड़ती हो ! यह तुमने कैसे जाना, कि मैंने रुपया पाया है ? क्या सपना देखा है ?

रजि०—तो मालूम हुआ, कि तुमने हजम ही कर जानेका रुख बनाया है । देखो, यह रण्डीका पैसा है, तुम्हें ऐसा सतायगा कि छट्ठीका दूध याद आ जायगा ।

मनो०—(क्रोधमें) बस, जबान सम्हालकर बातें कर ।

रजिया—अबे जबानके ससुर ! जरा शर्म्म कर, बेईमानीपर न बाँध कमर ! खुदासे डर :—

वह जहर है, मेरा कि पल याद आवेगा तुझे ।
पैसा मेरा, बस खूनके आँसू रुलायेगा तुझे ॥

मनो०—(स्वतः) इसको कैसे मालूम हो गया ? बस माल

हड़प जाऊँ, और इसे मारकर इस बेवफाईका बदला चुकाऊँ।
(प्रकट क्रोधमें) रजिया! अब तू अगर ज्यादा बात बढ़ायेगी तो
मेरे प्यारको ठोकर मारने और मेरी इज्जत उतारनेका फल आज
ही पा जायगी।

रजिया—इसके पहले रजिया, बदला चुकायगी। मैं इन
गीदड़ भपकियोंमें आनेवाली नहीं।

"न रक्खूंगी कसर बाकी तुम्हें मैं भी सतानेमें।
असर हर्गिज नहीं होगा, यहाँ दिखानेमें॥
बड़े चालाक बनते हो, गोया बातें बनानेमें।
मिलना कुछ नहीं तुमको, यहाँ हीले बहानेमें॥

मनो०—सच है:

नरककी पुतलियाँ हैं, रण्डियाँ बस इस जमानेमें।
जो कुत्तोंकी तरह फिरती हैं, दीखती हर ठिकानेमें॥
दुःखी नर अन्तमें होते हैं, इनसे दिल लगानेमें।
इन्हें पीड़ा नहीं होती, किसी दिन दुखानेमें॥

रजि० -(आँखें लालकर) बस खबरदार! बेईमान! जबान
बन्द कर।

मनो० --(अत्यन्त क्रोधित होकर) रजिया! रजिया!! मालूम
होता है कि अब तू जान ही गँवायगी?

रजिया—(नेपथ्यकी ओर देखकर) ठहर जा; तुझे भी जहन्नुम
पहुंचानेका मसाला आता है।

मनो०—(नेपथ्यकी ओर देखकर आश्चर्यसे) हैं पुलिस! क्या
तूने मुझे फँसानेका जाल भी बिछाया है? ठहर (कमरसे री

निकालकर) पहले तेरी शामत आयी है (रजियाका हाथ पकड़कर उसे मारना और उसके गिरनेपर कुछ सोचकर) बस, अब फाँसी तो होनी ही है।

(अपने आपको छूरी मारकर गिरना।)

रजिया—(छटपटाती हुई) आह! दगा, दगा दगा। (मर जाती है।)

मनो०—(छटपटाता हुआ) हा! कालीदास! तेरा ही शाप आगे आया! आह! वेश्या! वेश्या! तेरा (रुक रुककर) सत्या-ना-श-आह-आह-आह! (मर जाता है।)

(इतनेमें श्यामलाल और हथकड़ी लिये दो सिपाही आते हैं दोनों लाशोंको देखकर चौंकते हैं। श्यामलाल दाँतों तले उँगली काटकर खड़ा देखता है और घबड़ाता है। एक नौकर आता है और देखकर भाग जाता है।)

पहला सिपाही—हैं, दो खून! (श्यामलालसे—घूरकर) क्यों जी! तुम तो वारण्टके मामलेमें हमें लाये हो? और यहाँ तो खूनका मामला है?

श्याम०—(डरकर) जमादार साहब! मैं जिसे गिरफ्तार कराने आया हूं; यह वही मरा पड़ा है। मालूम होता है इनमें झगड़ा हो गया और ये आपसमें ही लड़कर मर मिटे।

दूसरा सि०—(हथकड़ी पहनाकर) नहीं नहीं; यह रण्डीके घरका मामला है। जरूर तुम भी इसमें शामिल हो!

श्याम०—(घबड़ाकर) नहीं नहीं, सरकार! मैं कुछ भी नहीं जानता। (स्वतः) हाय! हाय! हाय! अब बेमौत मरा।

प० सि०—(डपटकर) चुप रह! (दूसरे सिपाही) हाँ; हाँ, ले चलो।

श्याम०—नहीं, नहीं, मुझे इसमें न फँसाओ, छोड़ दो, मैं आपको प्रसन्न कर दूँगा।

दू० सि०—(पहले सिपाहीको) देखना भैया! मुरगी मोटी है, थोड़ेमें मत छोड़ देना!

प० सि०—(दूसरेको) नहीं, नहीं, क्या हम अनजान हैं? (श्यामलालसे) नहीं नहीं, हम नहीं छोड़ सकते। तुमको प्राण दण्ड मिलेगा। देखा! रण्डीके घर आनेका मजा?

श्याम०—(चिल्लाकर) अरे बापरे—फाँसी? (सिपाहीके पैर पड़कर) मुझे क्षमा करिये। आप जो माँगोगे, मैं दूँगा, पर छोड़ो मेरे भैया! (हाथ जोड़ता है।)

प० सि०—तो लाओ पाँच सौ रुपये।

श्याम०—देता हूँ, देता हूँ। (सिपाही हथकड़ी खोल देता है।)

दू० सिपाही—तो ला। (हाथ बढ़ाना)

श्याम०—लो भाई, तुमने बहुत की भलाई (जेबसे नोट देकर) बस अब तो कभी न सताओगे? अब तो मुझे फिर न फँसाओगे?

प० सि०—नहीं नहीं जाओ। हम अब दूसरी तरह इस खूनका मामला चलायेंगे। (कानमें बातें करते हैं)

श्याम०—(जाते जाते स्वतः) चलो जान बची और लाखों पाये। वाह रे रण्डीका घर! आते ही यह दक्षिणा देनी पड़ी। बस, अब इस कामको छोड़ा। (जाता है।)

प० सि०—(दूसरेसे) यार ! आज तो अच्छेका मुँह देखकर उठे थे।

दू० सि०—(पहलेको) सचमुच, पर हाँ, अब यहाँसे चलकर सूचना देनी चाहिये, फिर आकर दूसरोंकी भी खबर लेनी चाहिये। इस मामलेमें अच्छा रुपया हाथ आवेगा, जो यहाँ आया, वही कुछ देकर ही जान छुड़ावेगा।

प० सि०—बात तो ठीक है। तो फिर आओ।

(सब जाना चाहते हैं, सहसा नेपथ्यकी ओर देखकर रुक जाते हैं।)

प० सि०—(दूसरेसे) अरे यह तो सिपाही किसीकी गिरफ्तारीके लिये हथकड़ी वगैरह लिये आते हैं ?

दू० सि०—(देखता हुआ) हाँ, हाँ, ठीक तो है। चलो, जल्द चलो। उन सबको वहींपर रोक दें, जहाँतक हो सके इस मामलेको छिपायें और अपने हाथमें लायें।

तीसरा सि०—हाँ, हाँ, चलो, चलो।

(सबका प्रस्थान)

दृश्य चौथा।

[स्थान—शहरका बाहरी भाग]

(मैली और फटी धोती पहने मनोरमाका प्रवेश)

मनो०—(स्वतः अत्यन्त शोकातुर होकर) समय पाकर दुःखोंका भी अन्त हो जाता है, परन्तु मेरा दुर्भाग्य प्रतिदिन घोर

संकटोंका सामना कराता है। हे दयामय, दीनानाथ! फिर भी तुम्हारी ही कृपासे अपना धर्म बचाती, माँगती खाती, यहाँ-तक आयी, परन्तु अब कहाँ जाऊँ? किस मार्गसे जाऊँ!! किसके आगे अन्तःकरणका दुःख जी खोलकर सुनाऊँ? प्राण-नाथका दर्शन किस प्रकार पाऊँ? :—

कर दया तू ही प्रभू, अब किस लिये देरी हुई?
किस लिये मुझपर कृपा नहीं, ईश! है तेरी हुई?
रैन दिन रोती हूं मैं, संकटमें अब घेरी हुई।
हा! पती होते दयानिधि! यह गति मेरी हुई?

(चारों ओर देखती हुई) हा! कोई भी ऐसा दिखायी नहीं देता जो मुझे मार्ग दिखा दे। (ठहरकर ठण्डी साँस लेती हुई) अच्छा, जिधर पाँव चलते हैं, उधर ही चल दूं।

(मनोरमा जाना चाहती है। सहसा नेपथ्यसे आती हुई एक आवाज सुनकर रुक जाती है)

आवाज—(नेपथ्यसे) उठा ले परमात्मा! अब मुझे उठा ले!

मनो०—(चौंककर) हैं! यह किसकी दुःख भरी पुकार है!! अवश्य ही किसीको बड़ा कष्ट हो रहा है, जो चिल्ला चिल्लाकर रो रहा है। (सहसा नेपथ्यकी ओर देखकर) हैं! यह तो कोई दुखिया पौरुषहीन अबला है।

(मनोरमा आश्चर्यसे देखती है, एक स्त्री गलित कुष्ट-रोगसे पीड़ित, हाथोंके सहारे जमीनमें सरकती और आहें भरती हुई आती है, मनोरमा उसे देखकर घृणा करती है और पीछे हटकर आश्चर्यसे उसकी ओर देखती है।)

स्त्री०—(अत्यन्त कर्कश स्वरसे, कराहती हुई) आह! पीड़ा,

पीड़ा, पीड़ा, पीड़ा (कहती हुई बेहोश होकर गिर जाती है ।)

मनो०—(घबड़ाकर रोमाञ्चित होती हुई) हाय ! बेचारी कुष्ट रोगसे पीड़ित होकर कैसा कष्ट पा रही है ! (हाथ जोड़कर) प्रभो ! दया करो, इस अभागिनीपर दया करो ।

स्त्री०—(सचेत होकर, छटपटाती हुई) आह ! मेरा सहायक कोई नहीं ! (ठहरकर) कौन होगा ? इस पापिनीका सहायक कौन होगा ? जब परमात्मा ही मेरे प्रतिकूल हैं, तब मेरा सहायक कौन होगा ?

मनो०—(स्वतः) अवश्य विधाता इसके प्रतिकूल हैं, परन्तु मुझसे इसका कष्ट नहीं देखा जाता (आगे बढ़कर प्रकट) बहन ! धीरज धरो, परमात्माका भरोसा करो, वह तेरी टेर अवश्य सुनेगा। (आश्चर्यसे स्त्रीको तरफ देखती है ।)

स्त्री०—(मनोरमाकी तरफ देखकर) कौन मनोरमा ! आह मनोरमा !!

मनो०—(आश्चर्यसे) कौन मेरी ननद कमला है ? यह मैं क्या देख रही हूं ? (पास बैठकर) कमला ! यहाँ कहाँ ? और तुम्हारी यह कैसी दशा ?

कमला०—दूर रहो प्यारी बहन ! दूर रहो, नहीं तो मेरे पापोंकी छाया तुमपर भी पड़ जायगी । (चिल्लाकर) मनोरमा ! मुझपर दया न करो, जाओ, जाओ, अपने आपको राजदण्डसे बचाओ ।

मनो०—कमला ! तुम क्या कह रही हो ! किसको कह रही हो ! बताओ, बताओ, यह तुम्हारी कैसी दुर्दशा ! आह, मुझसे

तुम्हारा यह कष्ट नहीं देखा जाता !

कम०—क्या नहीं जानती ? मेरी दशा देखकर मेरे कुकर्म्म नहीं पहचानती ? आह पीड़ा ! पीड़ा ! (छटपटाना)

मनो०—नहीं, बहन ! नहीं, मैं तुम्हारा वृत्तान्त कुछ भी नहीं जानती। मैं भी मृत्युके मुखसे छुटकारा पाकर आज बहुत दिनोंके बाद जङ्गलोंमें भटकती हुई यहाँतक आयी हूँ। पापियों की सतायी हूं।

कम०—क्या तुम घरमें नहीं थी ?

मनो०—नहीं, तुम्हारे पिताकी मृत्यु होते ही तुम्हारे भ्राता मुझे अकेली छोड़कर अपने दुर्व्यसनोंमें लिप्त हो गये। मैं केवल उस स्वामि-भक्त जीवनके सहारे अपने दुःखोंकी घड़ियाँ गिनती थी। सहसा एक दिन वह पापात्मा धर्म्मदास और दिलखुश मेरा सतीत्व नाश करनेके हेतु मुझे अकेली पाकर जङ्गलोंमें उठा ले गये परन्तु, परमात्माकी गुप्तशक्तियोंने उन दोनोंको मृत्युकी गोदमें सुलाया और मेरा प्राण तथा धर्म्म बचाया।

कम०—आह ! हम सबपर कैसा भयानक समय आया ! हा ! बहन मनोरमा ! मैं अपना हाल क्या सुनाऊँ ! क्या दुःखीको और भी दुखाऊँ ? :—

> रक्षा की तेरी सत्यने, तेरे सुहागने।
> मुझको जला दिया है, कुकर्म्मोंकी आगने॥
> व्यभिचारमें पड़कर, दशा यह हो गयी मेरी।
> वह भोग रही हूँ जो, लिखा था भागमें !

आह-पीड़ा-पीड़ा…

मनो०—बहन! क्या तुम भी अपने भाईकी तरह व्यभिचारमें पड़ गयी थीं? हा! :—

व्यभिचार दुराचारने, वह आग लगाई।
जल जलके हुई भस्म; सत्पुरुषोकी कमाई॥
घर भरका हुआ नाश, बची पास न पाई।
तिसपर यह दशा अन्तमे, देती है दिखाई॥

कम०—सत्य कहती हो बहन! सत्य कहती हो! :—

माँग खानेका भी अब है न ठिकाना कोई।
अब तो मरनेका भी, निकलता न बहाना कोई॥
देख लो अन्त अवस्थाको, ऐ दुनियावालो!।
"पाप परिणाम" को लख, भूल न जाना कोई॥

आह-पीड़ा-पीड़ा!

(कहकर मूर्च्छित हो जाती है।)

मनो०—(आश्चर्य्यसे देखकर) क्या मूर्च्छित हो गयी! ओः व्यभिचार! तेरा सत्यानाश हो :—

देख लो गति क्या हुई, इसकी पतीको छोड़कर।
अन्तमें हैं पाप निकले; तनको इसके फोड़कर॥
कर्म्म जो करते हैं ऐसे; मत बड़ोंका तोड़कर।
क्यों न उनसे ईश बैठेगा; सदा मुँह मोड़कर॥

परन्तु हाय! इस समय हमारा रक्षक कौन है? हे जगत्की रक्षा करनेवाले! :—

क्या कभी सुख-शान्तिका; दर्शन नहीं होना मुझे?
क्या सदा इस भाँति ही है; बैठकर रोना मुझे?

कम०—(कुछ सचेत होकर चिल्लाती हुई) आह! अब नहीं सहन होती! ओह पीड़ा—पीड़ा!

(कहती हुई छटपटाकर मर जाती है, मनोरमा देखकर घबड़ाती है।)

मनो०—क्या संसारसे चल बसी? हा! ऐसी भयानक मृत्यु!! आह! सर चकराता है, जी घबड़ाता है।

(कहती हुई अचेत होकर जमीनपर गिर जाती है।
कालीदास, दुर्गादास और जीवनका आना।
कालीदास दोनोंको पडी देखकर चौंकता
है और आश्चर्य्यसे मनोरमाके
पास जाकर देखता है।)

जीवन - देखो, कैसा भयानक कुष्ट रोग है!

दुर्गा० —यह सब कर्म्मोंका भोग है।

(मनोरमाका सचेत होना, कालीदासका चौंकना)

काली०—कौन! मनोरमा?

मनो०—(आश्चर्य्यसे देखकर) कौन! मेरे प्राणनाथ!!

(मनोरमा और कालीदासका फुर्तीसे गले मिलना)

काली० —धन्य हो; प्रभो! तुम धन्य हो (मनोरमाको पुनः गलेसे लगाता है)

मिल गया जीवनका मोती; जो था अपना खो गया।
स्वप्नमें आशा न थी जिसकी; इस समय वो हो गया॥

(दोनों गले मिलकर आंसू बहाते हैं। दुर्गादास और
जीवन ऊपरको देखते हुए ईश्वराराधना करते हैं।)

दुर्गा०(स्वतः)

मिल गये बिछुड़े हुए, सुख चिह्न सब होने लगे।
प्रेमाश्रु बहकर आज, पिछले पाप सब धोने लगे॥

मनो०—जीवन ! तुमने भी मेरे कारण बड़ा कष्ट उठाया है।

जीवन—परन्तु स्वामिनी ! आज इस दुर्लभ मिलापने सारा ही दुःख भुलाया है।

काली०—प्रिये ! पहले अपना वृत्तान्त सुनाकर मेरा हृदय शान्त करो। बताओ ! बताओ !! तुमपर कौनसा भयानक संकट आया, जिसने घरबार छुड़ाकर तुम्हें जंगलोंमें भटकाया ?

मनो०—

पूछना मुझसे जो हो; पूछो वो अपने आपको।
किस लिये संगी बना बैठे थे, दुःख संतापको ?
दुर्दशा यह आपकी, व्यसनोंके ही कारण हुई।
हो रहे हैं अग्रसर, जो आज पश्चात्तापको॥
धर्म्म धन सब कुछ लुटा, हो गये भिखारी अन्तमें॥
शीघ्र ही क्यों भूल बैठे हैं; पिताके शापको ?

काली०—(पश्चात्तापसे)

बस, बस; प्यारी मनोरमा ! आगे न सुनाओ :—
बिंध चुका है जो हृदय, दुख दर्द और अपमानसे।
अब उसे बींधों न प्यारी, शब्दरूपी बानसे॥

थूको, थूको, सब मिलकर मेरे मुंहपर थूको, और आजकलके नवयुवकोंको दिखाओ कि व्यभिचारियोंकी दशा ऐसी ही होती है (सर पीटता है।)

मनो०—प्राणेश्वर ! अब पश्चात्ताप करनेसे कोई लाभ नहीं होगा, कुछ चिन्ता नहीं; परमात्मा फिर हमारी सुनेगा।

जीवन—सुनेगा और अवश्य सुनेगा। चिन्ता नहीं, यह जो कुछ हो चुका है, वह केवल कर्म्मोंका भोग था, परन्तु अब वह समय गया :—

हो गया जब शुद्ध अन्तःकरण पश्चात्तापसे।
हो गया तब आज, छुटकारा भी मानों पापसे॥

दुर्गा०—सत्य कहते हो जीवन ! तुम सत्य कहते हो। मित्र कालीदास ! अब अपने आपको सम्हालो; सोचको धूलमें डालो और सचेत होकर गृहस्थ-धर्म्मको पालो।

काली०—मित्र ! तुम क्या कहते हो ?:—

जिसने नित्य, कुकर्म्म किये, और कुल-मर्य्यादा डुबाई।
जिसने मित्र कुमित्र किये, अपनी सम्पत्ति लुटाई॥
जिसने कामी कुत्तोंकी मत, भली जान मन लाई।
जिसने घरकी नार तजी, वेश्यासे प्रीति लगाई॥
जिसने अपने पुरुषोंकी, समझी थी मत बौराई।
जिसने अपने जीवन भरमें, कौड़ी नहीं कमाई॥
जिसने सरबस फूंक दिया, अब हाथ रही ना पाई।
वह क्या अधम सुकर्म्म करे, जो पत निज गँवाई ? ॥

दुर्गा०—नहीं ऐसा न कहो :—

पूर्व जन्मके पापोंने तुमरी यह दशा बनाई।
दुर्व्यसनोंने तुमको, मानों अच्छी बुरी सुझाई॥
मित्र स्वार्थी मिले जिन्होंने कपट प्रीति दिखलाई।

बन्धु बान्धवोंने तुमको, हितकी सीमा दरसाई ॥
निज नारी और परनारी, यह वेश्याने परखाई।
धन सम्पत्ति फूक दी जितनी उतनी शिक्षा पाई ॥
अब चेतो, मानों हितकी, जब इतनी ठोकर खाई।
मर्द बनो, कर दिखलाओ अब, तो कुछ भली कमाई ॥

काली०—(चौंककर स्वतः) ओह! क्या अबतक भी मैं अन्धेरेमें पड़ा था? (प्रकट) धन्य हो मित्र दुर्गादास! तुम धन्य हो, बस अब मैं अपना कर्त्तव्य भली भाँति जान गया, इस स्वार्थ भरे संसारको पहचान गया।

जीवन०—तो फिर देरी क्या है:—

पुनः सर्व सुख भोगो चलकर, जरा नहीं घबराओ।
सब कुछ है घरमें स्वामी! अब मत हिरदे कलपाओ ॥
घर गृहस्थ बन मुख अपना, अब उज्वल कर दिखलाओ।
जितना है अपमान हुआ, उतना ही मान बढ़ाओ ॥

काली०—(ठण्डी साँस लेकर)

जीवन! जीवन!! जब तुम जैसा स्वामिभक्त नौकर, मनोरमा जैसी पतिव्रता नारी और दुर्गादास जैसा सच्चा मित्र मेरे सहायक हैं, तब सर्व सुख प्राप्त होनेमें सन्देह नहीं, परन्तु मैं यह सोच रहा हूं, कि धन, सम्पत्ति, मान, बल, गुण, सब कुछ तो मिल जायगा, पर इन सब सुखोंको देनेवाला पिता कहाँसे आयगा? पिताके दुःखी अन्तःकरणसे निकला हुआ वह शाप मुझे कब सुखी बनायगा?

जीवन०—परन्तु स्वामी! यह निश्चय जानिये, कि यह

आपका सेवक, आपके इन दुःखोंको शीघ्र ही भुलायगा और अपने ऋणसे उतीर्ण हो जायगा। चलिये, अब घरकी ओर प्रस्थान करिये, किसी प्रकारकी आपत्ति न करिये।

मनो०—प्राणेश्वर! जीवनके मुखसे निकला हुआ एक एक शब्द अपना सहायक जानिये और यह जो कुछ कहता है, उसे सत्य मानिये। आपने अबतक भी इस स्वमि-भक्तका हृदय नहीं जाना और इसके अमूल्य कर्त्तव्योंको नहीं पहचाना।

"यह धन धाम धर्म्म प्रिय बन्धू; सबका है रखवारा।
इसे दास मत जानो स्वामी! यह है बन्धु हमारा॥

जीवन०—नहीं स्वामिन्! इस तुच्छ सेवकका इतना मान न बढ़ाओ। मैंने तो कुछ भी सेवा नहीं की, सेवा करनेका समय तो अब आया है, जो परमात्माने आज सबको मिलाया है।

मनो०—(सहसा कमलाको देखकर चौंकती है।) आह! मैंने पतिको पाकर सारा दुःख भुलाया? (कमलाके पास जाकर) हा! प्यारी कमला! तेरी इस भयानक मृत्युपर एक आँसू भी न बहाया! धिक्कार है! मुझको धिक्कार है!! (बैठकर रोती है।)

काली०—हैं! कमलाकी मृत्यु!! क्या यह कुष्ट रोगसे गलित मृत-देह कमलाकी है?

मनो०—देखो, देखो, अपनी बहन कमलाकी भी दुर्दशा देखो! जिसने अपने दुःखकी कहानी भी न सुनायी, और कालके मुँहमें समायी।

(जीवन और दुर्गादासका पछताना)

काली०—(सरपर हाथ मारकर) हे भगवन्! यह मैं क्या देख

रहा हूं? (रोता है ।)

दुर्गा०—कालीदास! अब रोनेसे काम न चलेगा। जो होना था सो हो चुका। इसने अपनी करनीका फल पाया है और संसारको प्रत्यक्ष दिखाया है, कि पतिको त्यागकर परपुरुषसे मिलनेवाली स्त्रियोंकी दशा ऐसी ही होती है। अब इसे उठाकर श्मशानमें पहुंचाओ और इसकी पूर्णगति कराओ।

(जीवन, दुर्गादास और कालीदास तीनों मिलकर कमलाकी लाशको उठाकर ले जाते हैं, मनोरमा रोती हुई पीछे पीछे जाती है।)

दृश्य पांचवां।

[स्थान—एक घरका दालान]

(पंडित अयोध्यानाथका प्रवेश)

अयो०—(स्वतः) वाहरे विधाताकी माया! तेरा पार किसीने नहीं पाया। हे भगवन्! यदि तूने एक भला और एक बुरा न बनाया होता, तो यह संसार किस प्रकार चलता? तेरी लीला तू ही जान सकता है, तूने इस सृष्टिमें अनेक प्रकारके जीव रचे हैं:—

एक बड़ा है तो एक छोटा है; एक खरा है तो एक खोटा है।
एक दुबला है एक मोटा है, एक लाठी है एक लोटा है॥
एक चलता है सजधजकर तो, एक फिरता बाँध लँगोटा है।
एक रखता है धनधाम सभी, एक रखता थाली लोटा है॥

परन्तु निर्धन और धनवान दोनों ही प्रसन्न दिखायी देते हैं। एक मनुष्य किसी कार्य्यको अच्छा समझकर करता है तो

उसका परिणाम भयङ्कर होता है; एक मनुष्य उस कर्मको बुरा जानकर भी स्वार्थवश करता है तो उसका परिणाम भला होता है। कुछ समझमें नहीं आता कि तुम्हारी यह कैसी माया है! मेरे यजमान किशोरीलालके पुत्र कालीदासने व्यभिचार-को एक अच्छा कर्म समझकर किया तो उसका परिणाम यह हुआ कि अन्तमें वह भिखारी हो गया! हाय! न जाने आजकलके नये धनवान गहरी नींद्में क्यों सो रहे हैं! अपनी दुलारी सन्तानों द्वारा अपना धन और धर्म क्यों खोवा रहे हैं! (दर्शकोंसे) प्यारे भाइयो! क्यों अपनी सन्तानोको लाड़ और प्यारसे पाल पालकर सयाना बनाते हो? किस लिये उनको अधिक रुपया पैसा, गाड़ी-घोड़ा, दिखा दिखाकर व्यभिचार सिखाते हो? किस कारण अपने पुत्रोंको एकबार उपार्जन करते हुए देखकर उन्हें योग्य समझने लग जाते हो और अपना नाश कराते हो? हा! :—

धनी नहिं जाने धनका भोग॥

जो नहिं जाने धन व्यय करना, उसको है धन रोग।

धनी नहिं जाने धनका भोग॥

धन पाते ही फूल उठें, समझें नहिं क्या संयोग;

निर्धनको तृणवत समझें अब नये धनी सब लोग॥

धनी नहिं जानें धनका भोग॥

बहुधा वेश्याभक्त बने, अब भला लगे सुख भोग।

दिन दिन पतित होत निज जाती, करे न कुछ उद्योग।

धनी नहिं जानें धनका भोग॥

दृश्य छठां।

[स्थान—किशोरीलाल जमीन्दारका घर]

(मध्य भागमें एक कोच और चार कुर्सियाँ रक्खी हैं, दाहिनी ओर एक ऊँची चौकी है जिसपर किशोरीलालका एक बड़ा सा हस्त-लिखित चित्र रक्खा है।)

(आगे आगे अयोध्यानाथ, उनके पीछे कालीदास, दुर्गादास जीवन तथा मनोरमाका आना, अयोध्यानाथका एक कुर्सी-पर बैठ जाना और सबका उदास भावसे खड़े रहना। सहसा कालीदासकी दृष्टि किशोरीलालके चित्रपर पड़ती है, और वह रोमाञ्चित होनेका नाट्य करता हुआ हाथ जोड़कर चित्रके सम्मुख बैठ जाता है।)

काली०—(पश्चात्तापसे) क्षमा, क्षमा, पिताजी! क्षमा कीजिये। हा! पिताजी! इस समय आप कहाँ हैं? आइये, एक बार आइये; और देखिये, कि आपका पापी पुत्र आपके दुःखी अन्तःकरणसे निकले हुए शापका कैसा भीषण प्रतिफल पा रहा है। हा! पिताजी! यह काली कुत्ता उस समय नहीं जानता था, कि आपके अमूल्य उपदेशोंका क्या महत्व है? मैं हूं-आपके सब सुखोंको छीनकर आपकी उच्च पवित्र और उन्नत आत्माको दुखानेवाला मैं हूं। परन्तु फिर भी क्षमा कीजिये, इस कुलांगार-को केवल एकबार क्षमा कीजिये।

अयो०—कालीदास ! अब समझा कि हमलोग तुम्हें किस दिनके लिये कहते थे ?

काली०—(हाथ जोड़कर) समझा, समझा, गुरुदेव ! अब अच्छी तरह समझा, कि बड़ोंकी ताड़ना अन्तमें सुख देती है। क्षमा कीजिये गुरुदेव ! अब मुझे क्षमा कीजिये और बताइये, कि मेरे पापोंका प्रायश्चित्त किस प्रकारसे होगा ? पिताकी आत्मा किस प्रकार शान्ति पायगी ?

अयो०—केवल कर्त्तव्यका पालन करने और भविष्यमें सदाचारी बननेसे।

काली०—तो मैं वैसा ही करूँगा, परन्तु बताइये कि अब मैं क्या करूँ ?

अयो०—वही, जो तुम्हारे बड़े सदासे करते आये हैं :—

चलो मति बड़ोंकी मान ॥

धर्म, कर्म्म, सत् कभी न त्यागो, जो चाहो कल्यान।
बोलो वाणी मधुर, हृदय धरि दया क्षमा हरि-ध्यान।
गो-ब्राह्मण सम्मान, देशहित तृणवत् समझो प्रान।

चलो मति सदा बड़ोंकी मान ॥

संग करो सत्पुरुषोंका, मानों जो कहें सुजान।
जिन त्यागे यह नीति-बचन गुरु, तिनको पशु-सम जान।

चलो मति सदा बड़ोंकी मान ॥

काली०—ऐसा ही होगा, गुरुदेव ! ऐसा ही होगा, परन्तु मुझे पितृ-शापसे मुक्त कराओ।

अयो०—कालीदास ! (चित्रकी ओर देखते हुए) देखो यह

एक जड़ वस्तु है, परन्तु यही चित्र, जिसको तुम पिताके रूपमें देखते हो, तुमको क्षमा करनेके लिये साक्षी देगा! यदि तुम अपने सच्चे अन्तःकरणसे क्षमा माँगोगे तो यह चित्र चैतन्यरूप धारणकर तुम्हें गले लगा लेगा।

(दुर्गादास और मनोरमा आश्चर्य्य करते हैं।)

काली०—(चित्रकी ओर ध्यानकर) पिताजी! क्या अभी भी तुम्हें सन्देह है, कि मैंने सच्चे अन्तःकरणसे क्षमा नहीं माँगी? नहीं नहीं, अब यह पश्चात्तापसे पीड़ित कालीदास अधर्म्म और कुकर्म्मोके भीषण समुद्रमें डूबने न जायगा :—

अब फूंक चुका क्या फूकूँगा।
व्यसनोंके मुँहपर थूकूँगा॥
अब साक्षी है भगवान मेरा।
नहिं धर्म्म कर्म्मसे चूकूँगा॥

अब क्षमा, पिताजी! क्षमा कीजिये, यदि इस समय मेरा हार्दिक पश्चात्ताप सत्य है; तो प्रत्यक्ष होकर एक बार मुझे दर्शन दीजिये।

(चित्रके पीछेसे जीवित किशोरीलालका निकलकर कालीदासकी तरफ जाते दिखायी देना, सबका स्तम्भित होकर आश्चर्यसे देखना, कालीदासका चौंक उठना, मनोरमाका किशोरीलालके पैर पड़ना, किशोरीलालका आशीष देना।)

काली०—(बड़े आश्चर्य्यसे) कौन पिताजी! हैं!! यह मैं, क्या देख रहा हूं? क्या जीवित पिता! (दौड़कर किशोरीलालके पैरोंपर गिर जाता है।)

(दोनोंका गलेसे मिलना)

किशो०—(कालीदासको उठाते हुए) पुत्र ! अब मैंने तुझे क्षमा किया।

काली०—(स्तम्भित होकर) क्या मैं इस समय स्वप्न देख रहा हूं ? पिताजी ! पिताजी !! क्या सत्य ही आप मेरे सम्मुख खड़े होकर मुझे क्षमा प्रदान कर रहे हैं ?

किशो०—हाँ, मैं सत्य ही तुम्हारे सम्मुख हूं।

काली०—(आश्चर्य्यसे) क्या, आप जीवित थे ?

किशो०—तुमने तो मेरे प्राण लेनेमें कसर उठा न रक्खी थी; परन्तु भगवानकी कृपा और इस स्वामि-भक्त जीवनके प्रतापसे अबतक जीवित हूँ।

काली—(घुटनोंके बल बैठ और हाथ जोड़कर) क्षमा, क्षमा, पिताजी ! क्षमा कीजिये। आह ! मैंने कैसे कैसे अनर्थ और महापाप किये हैं ! (जमीनको नोचता हुआ, पागलोंकी भाँति) माता वसुन्धरे ! मुझे शीघ्र ही अपनी गोदमें सुला ले, क्योंकि मैं इस पवित्र भूमिपर खड़ा रहनेके योग्य नहीं हूं।

अयो०—बस, कालीदास ! बस, अब सबको विश्वास हो गया कि तुम ठीक राहपर आ गये। किशोरीलाल ! अब आप इसे क्षमा कीजिये और सान्त्वना देकर इसे इसका कर्त्तव्य सुझाइये, सारे दुःखोंको भुलाइये।

किशो०—गुरुदेव ! यदि आपकी ऐसी ही आज्ञा है, तो मैंने इसे क्षमा किया। (कालीदाससे) आओ, पुत्र मेरे समीप आओ।

काली०—(हाथ जोड़कर) पिताजी ! जब आपने मुझे क्षमा

कर दिया तो आज मेरा प्रायश्चित्त हो गया; परन्तु मुझे यह तो बताइये, कि आप किस प्रकार जीवित रहे ?

किशो०—इसका हाल फिर विस्तारपूर्वक कहूँगा। इस समय तुम्हें धैर्य्य देनेके लिये इतना ही कह देता हूं, कि मुझे तुम्हारे विषसे भरे चायके प्यालेसे बचानेवाला, मुझे मर जानेका झूठा स्वाँग करनेका रास्ता बतानेवाला, मुझे घरके और तुम्हारे लोगोंसे छिपाकर, पंडित अयोध्यानाथके घरमें पहुंचानेवाला, आज दिनतक मुझको छिपानेवाला, पल पलके समाचार सुनानेवाला; हमारा धन और धाम बचानेवाला यह स्वामि-भक्त जीवन है।

(सबके सब आश्चर्य्य करते हुए एक स्वरसे जीवनको
धन्यवाद देते हैं, जीवन घुटनोंके बल बैठकर
हाथ जोड़ता है।)

सब०—(हाथ उठाकर) धन्य हो जीवन ! तुम धन्य हो !

किशो०—धर्म-पुत्री मनोरमा ! तूने भी बड़ा कष्ट उठाया है। मैं जीवनसे तुम्हारा और कमलाका सब हाल सुन चुका हूं। परमात्माने बड़ी कृपा की जो आज हम सब एक महान कठिन समयसे बचकर एकत्रित हुए हैं। कमलाकी मृत्युका दुःख तो अवश्य ही हुआ, परन्तु कुकर्म्मोंमें पड़कर ही उसकी मृत्यु हुई। ऐसी कन्या यदि जीवित रहती तो और भी सन्ताप होता। फिर भी इन सब दुर्दशाओंका कारण कालीदासका दुराचार ही है। अच्छा, जो हो चुका; उसका विचार क्या करना है ? दुर्गादास-जी ! तुमने तन मन और धनसे जो सहायता कालीदासकी की

है और जिस तरह अपने हृदयकी उच्चताका परिचय देते हुए मेरे परिवारकी रक्षा की है; उसका बदला हम इस जन्ममें नहीं चुका सकते तुम्हारी करनीका फल तुम्हें भगवान देगा।

दुर्गा०—नहीं, नहीं, मुझे लज्जित न करिये, मैंने कौनसा ऐसा बड़ा काम किया है ?

अयो० —कालीदास ! देख लो और अच्छी तरह देख लो, कि नेकी और बदीमें कितना अन्तर है। बस, अब अपने कर्त्तव्यका पालन करते जाओ, और पिताकी सेवाकर उनके आन्तरिक दुःखोंको मिटाओ। आओ, पहले सब मिलकर एक बार परमात्माके चरणोंका ध्यान लगावें।

(सब मिलकर ऊपर ध्यान किये ईश्वरकी स्तुति करते हैं।)

(गायन)

तुमरी माया प्रभु न्यारी।
तुम भव भय संकट हारी ॥ टेक० ॥
तुम दाता त्राता जग जीवन।
पालन दीन दुखारी ॥
सुर नर मुनि निस दिन तोहिं ध्यावहिं।
तुम भवसागर तारी ॥
तुम जानो लीला प्रभु ! तुमरी।
हम क्या लखें अनारी ॥

—❀ यवनिकापतन ❀—

विपद्-कसौटी

-: या :-

मान्धाता

यह नाटक एक विचित्र ग्रन्थ है। सोना सज्जनको परखनेके लिये विपत्ति ही कसौटी है, विपत्तिमें ही अपना पराया, धार्मिक, पापी, सच्चा, झूठा परखा जाता है। सुखमें तो सभी अपने होते हैं—दुःखमें जो अपना है, वही अपना है, विपत्तिमें—सर्वस्व स्वाहा हो जानेकी तय्यारी रहनेपर भी जो अपनी जगहसे—अपने सत्यसे नहीं टलता, वही खरा है। इसमें अयोध्याके राजा मान्धाताकी अद्‌भुत कार्य दक्षता और सत्यता दिखाई गई है। रावण और लवण नामक राक्षसोंकी विकट लीला, मित्रद्रोही गन्धार-राजकी अद्भुत चालें, सेनापति विक्रमकी असाधारण वीरता, प्रेमका विचित्र रहस्य, राहु केतु तथा धर्मराजकी अलौकिक परीक्षा प्रणाली, तथा त्रिभुवन नामक बालकका रूप धारण-कर स्वयं विष्णु भगवानका, जगतमें आकर बात बातमें उपदेश देना सभी बातें बड़ी ही आश्चर्य भरी, उपदेश भरी तथा कौतुक भरी हैं। पौराणिक नाटकोंमें यह बहुत ही ऊँचे दर्जेका हुआ है। साथ ही इसकी अनोखी शायरी, मजेदार गाने तथा हँसनेवाला दृश्य—कामिक भो बड़ा ही मोह लेनेवाला है। हमारा कहना है, कि यदि आपको नाटक पढ़नेका कुछ शौक हो तो एक बार इसे अवश्य पढ़िये—इससे आपको मालूम होगा; कि मनुष्यको विपत्तिमें कैसा रहना चाहिये। मूल्य १)